॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

# श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—२१ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—१०-१२

## नीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुसे श्रीवल्लभभट्टका मिलन

• स्तवमाला • गुरुवर्गका वाणी-वैभव • श्रील गुरुदेवके वचनामृत

## संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
**श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज**

---

प्रेरणा–स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
**श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज**

---

**सम्पादक**—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी,
श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

**प्रचार सम्पादक संघ**—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त जनार्दन महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भारती महाराज
श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी, श्रीमती वृन्दा(वन्दना) दासी

**सहकारी सम्पादक संघ**—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी–एच. डी.
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी–एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

**कार्याध्यक्ष**—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

**कार्यकारी मण्डल**—श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीप्रेमदास, श्रीसुबलसखा दास

**ले–आउट, फोटो एवं डिजाइन**—श्रीभक्तबान्धव कृष्णकारुण्य महाराज

**कार्यकारी सहायक**—श्रीभक्तिवेदान्त निरग्नि महाराज, रङ्गदेवी दासी,
पूजा दासी, मधुकर दास, सुशीलकृष्ण दास,
गौरप्रिया दासी, शचीनन्दन दास



श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा–२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

वर्ष ❀ २१

श्रीगौराब्द – ५३९
वि. सं. – २०८२; नारायण-गोविन्द मास ; सन् – २०२५ –२६ (५ दिसम्बर – ३ मार्च)

संख्या ❀ १०–१२

## विषय-सूची

### 'स्तव-वैभव'

**श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत** ............................ २
—श्रील रूप गोस्वामी

### गुरुवर्गका वाणी-वैभव

**विभिन्न उपदेश** ............................ ४
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

**श्रीश्रीसरस्वती-संलाप** ............................ ७
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

**भोगी, देहारामी, आलसी तथा क्रोधी व्यक्ति मठवास तथा हरिसेवाके अनधिकारी** ............................ १४
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

**गौड़ीयका तैंतीसवाँ वर्ष** ............................ १६
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

### श्रील गुरुदेवके वचनामृत

**श्रीरूपानुग-धारा, 'श्रील' शब्द तथा श्रीगौड़ीय वेदान्तकी व्याख्या** ............................ २०
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

### धारावाहिक

**श्रीगौराङ्ग-सुधा** ............................ २४

### विरह-सम्वाद

**श्रीपाद भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजकी स्मृतिमें** . ३१

**श्रीपाद भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजकी स्मृतिमें** .. ३७

**स्वधाममें श्रीपाद कान्तिलाल प्रभु** ............................ ४१

**स्वधाममें श्रीमती गीता दीदी** ............................ ४२

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक
श्रीश्रील रूप गोस्वामी प्रभुके द्वारा प्रणीत

# श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत

## अथ स्वयमुत्प्रेक्षितलीला*—

श्रीराधावल्लभाय नमः।

**श्यामल-सुन्दर-सौहृदबद्धा,**
**कामित-तत्पदसङ्गतिरद्धा ।**
**धैर्यमसौ स्मरवर्धित बाधा**
**प्राप न मन्दिर कर्मणि राधा॥ १ ॥**

एक समय श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके चरणोंके सङ्गकी अभिलाषिणी श्रीमती राधिका उनके प्रेममें आबद्ध होकर कन्दर्पजनित वेदना द्वारा अधीर हो गयीं और अपने गृहकार्योंके द्वारा भी अपने चित्तको स्थिर करनेमें समर्थ न हो सकीं॥ १॥

**तं कमलेक्षणमीक्षितुकामा**
**साच्छलतः स्वयमुज्झितधामा।**
**यामुनरोधसि चारु चरन्ती**
**दूरमविन्दत सुन्दरदन्ती॥ २॥** (दोधकम्)

तत्पश्चात् उन कमलनयन श्रीकृष्णके दर्शनोंके लिये व्याकुल, सुन्दर दाँतोंवाली श्रीराधिका सूर्यपूजाके लिये कुसुम चयन करनेका छल करके स्वयं ही गृह परित्यागकर कृष्णको ढूँढते हुए चलते-चलते अति दूर यमुनातट पर आ पहुँचीं॥ २॥

**प्राप्योदारां परिमलधारां**
**कंसारातेरुदयति वाते।**
**सेयं मत्ता दिशि दिशि यत्ता**
**दृष्टिं कम्रामकिरदनम्रा॥ ३॥**

यमुनातट पर श्रीमती राधिका वायुमें श्रीकृष्णके अङ्गोंकी सुमधुर सुगन्धके प्रबल प्रवाहका घ्राण प्राप्तकर उन्मत्त हो गयीं और चकित होकर उत्सुकतावश ग्रीवा (गर्दन) उठाकर अपने मनोहर नयनोंसे सभी दिशाओंमें दृष्टिपात करने लगीं॥ ३॥

**भृङ्गीवेयं तमपरिमेयं**
**मुग्धा गन्धं हृदि कृतबन्धम्।**
**व्यग्रप्राया पुलकितकाया**
**प्रेमोद्-भ्रान्ता द्रुतमभियाता॥ ४॥**

श्रीराधिका कृष्णके अङ्गोंकी उस अपरिमेय (असीम) सुगन्ध द्वारा मुग्ध हो गयीं, उस सुगन्धको श्रीराधिकाने अपने हृदयमें आबद्ध कर लिया, उनका चित्त उद्विग्न हो गया, उनके प्रत्येक अङ्गमें पुलक होने लगा तथा श्रीकृष्ण-प्रेममें पूर्णतया तन्मय होकर वे तीव्र गतिसे सुगन्धकी दिशाकी ओर दौड़ने लगीं॥ ४॥

---

* स्वयं अर्थात् अपने किसी उपायके द्वारा अथवा स्वयं ही दूतके रूपमें उत्प्रेक्षिता अर्थात् सम्पादित की गयी लीलाका नाम स्वयमोत्प्रेक्षितलीला है।

**कृष्णमवेक्ष्य ततः परितुष्टा**
**पुष्पगणाहृति कैतवजुष्टा।**
**मन्थरपाद सरोरुहपाता**
**कुञ्जकुटीरतटीमुपयाता॥ ५॥**

कुछ समय पश्चात् दूरमें स्थित श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्तकर श्रीराधिका पूर्णतया सन्तुष्ट हो गयीं, उनमें भावावेशका सञ्चार हुआ, जिसके फलस्वरूप वे पहले की भाँति तीव्र गतिसे श्रीकृष्णके समीप जानेमें असमर्थ हो गयीं तथा अब उनके चरणकमल अति मन्थर गतिसे अग्रसर होने लगे। इसी कारण बाह्य रूपसे पुष्पचयन करनेका अभिनय करते हुए वे निकुञ्जवनकी ओर प्रस्थान करने लगीं॥ ५॥

**सापृथुवेपथु दोलितहस्ता**
**प्रेमसमुत्थित भावविहस्ता।**
**फुल्लमहीरुहमण्डल कान्ते**
**तत्र पुरः प्रससार वनान्ते॥ ६॥**

श्रीकृष्ण दर्शनके फलस्वरूप श्रीराधिका श्रीकृष्ण-प्रेमजनित हर्ष, गद्-गद आदि भावोंसे विह्वल हो गयीं, उनके हस्तयुगल अत्यधिक कम्पन करने लगे तथा इस भाव-विह्वल अवस्थामें उन्होंने वनके अन्तमें अवस्थित प्रफुल्लित तरुलताओंसे घिरे हुए निकुञ्जमें प्रवेश किया।

**माधवस्तां तदालोकयन् राधिकां**
**बल्लवीवर्गतः सद्गुणेनाधिकाम्।**
**केयमुद्बाधते मद्वनं रागत**
**स्तूर्णमित्युल्लपन् फुल्लधीरागतः॥ ७॥**

व्रजरमणियोंकी शिरोमणि श्रीराधिकाको पुष्पचयन करते देखकर श्रीकृष्ण उनसे कहने लगे—"आप कौन हैं जो स्वेच्छासे हमारे निकुञ्जवनमें उपद्रव कर रही हैं"—प्रीतिपूर्वक ऐसा कहते हुए श्रीकृष्ण आनन्दित हृदयसे तुरन्त श्रीराधिकाके समीप उपस्थित हुए॥ ७॥

**भालविद्योतित स्फीतगोरोचनं**
**पार्श्वतः प्रेक्ष्य तं विभ्रमल्लोचनम्।**
**सा पटेनावृता कैतवाद्भामिनी**
**वक्रितभ्रूरभूत् दूरभूगामिनी॥ ८॥**

सुन्दर गोरोचना द्वारा विभूषित ललाटवाले, चपलनयन श्रीकृष्णको अपने निकट देखकर श्रीराधिकाकी भौंहोंने विकृत भङ्गिमाको धारण किया तथा उसी अवस्थामें वे श्रीकृष्णसे कहने लगीं—"मैं सूर्यपूजाके लिए कुसुम चयन कर रही हूँ, आप इस समय मुझे क्यों इस कार्यमें बाधा प्रदान कर रहे हैं"—ऐसा कहती हुई श्रीराधिका अपने सर्वांग आवृत करके पुष्पचयनके छलसे कुछ दूर अन्य स्थानपर चली गयीं॥ ८॥

**लीलोद्-भ्रान्तं मुहुरथ नुदती**
**नेत्रद्वन्द्व दिशि दिशि सुदती।**
**वीक्षां चक्रे दलभरविकटां**
**मल्लीवल्लीं तटभुवि निकटां॥ ९॥**

अनन्तर श्रीराधिका निज चपल मनोहारी नयनोंसे कभी किसी दिशामें तो कभी किसी दिशामें दृष्टिपात करते हुए पुनः पुनः थोड़ी दूर यमुना तटपर घने पत्तोंसे सुशोभित मल्लिकाकी लताओंको निहारने लगीं॥ ९॥

**तामुन्मीलद्-भ्रमर-विलसितां**
**लब्धा पुष्पैरुपरि किल सिताम्।**
**लीनेवाभूद्विकसितमदना**
**तस्याः प्रान्ते सरसिजवदना॥१०॥**
(भ्रमरविलसिता।)

तत्पश्चात् कमलके समान मुखवाली श्रीराधा कन्दर्प प्रभाव द्वारा उल्लसित होकर भ्रमरोंके झुण्डोंसे परिपूरित और असंख्य श्वेत पुष्पोंसे सुशोभित उस मल्लिका-लताके मध्यवर्ती स्थानमें मानो छुपकर अवस्थान करने लगीं। ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्रीराधिका वनमें समाहित हो गयी हैं॥ १०॥

क्रमशः

# विभिन्न उपदेश

## श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी-वैभव

**प्रश्न १—जीवोंकी क्रमोन्नतिका आधार क्या है?**

**उत्तर—**"अपने-अपने अधिकारमें स्थित रहनेपर ही जीवकी क्रमोन्नति होती है तथा अपने अधिकारसे च्युत होनेपर ही पतन होता है।"

(श्रीपुरुषोत्तम मास माहात्म्य, सज्जन-तोषणी, १०/६)

**प्रश्न २—स्वयं श्रीनाम ग्रहण किये बिना तथा श्रीनामका प्रचार किये बिना क्या अन्य जीवोंके हृदयमें भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करायी जा सकती है?**

**उत्तर—**"जब तक जीवोंके हृदयसे भक्तिकी प्रतिकूल वासनाएँ दूर नहीं होती, तब तक उन्हें चाहे कितने भी सदुपदेश प्रदान किये जायें, वे समस्त उपदेश उनके कानोंसे ही वापस आ जायेंगे, वे उनके हृदयमें प्रवेश नहीं करेंगे। अतएव तुम लोग चाहे जितना भी भक्तिधर्मका प्रचार करो, अथवा जितना भी भक्तिकी कथाओंपर विचार-विमर्श करो, ये भक्ति-अनुकूल क्रियाएँ भी उन श्रोताओंके अपने कर्म-दोषोंके कारण उन्हें कुछ सुफल प्रदान नहीं कर पायेंगी। अतएव तुम्हारी वक्तृता अथवा विचार-विमर्शका कुछ भी फल नहीं होगा। तुम्हारे लिए मेरी यही आज्ञा है कि ऐसे दुर्गतिसम्पन्न जीवोंके मङ्गलाकाङ्क्षी बनकर तुमलोग अनुक्षण श्रीनामकी महिमाका कीर्तन करो। उस नामकी महिमाको श्रवणकर उन लोगोंकी जो सुकृति एकत्रित होगी—नामके माहात्म्यके प्रति उनके हृदयमें जिस विश्वासका सञ्चार होगा, उसीके फलसे नामकी कृपाके द्वारा जन्म-जन्मान्तरमें उनकी शुद्धभक्तिधर्ममें निष्कपट श्रद्धा उदित होगी।"

(नववर्षमें आर्ति-निवेदन, सज्जन-तोषणी, १५/१)

**प्रश्न ३—श्री, सुख, दुःख, पण्डित, मूर्ख, सुपथ, कुपथ, स्वर्ग, नरक, बन्धु, गुरु, गृह, धनी, दरिद्र, कृपण, स्वाधीन तथा पराधीन किसे कहते हैं?**

**उत्तर—**"निरपेक्षता आदि गुणोंका नाम ही **'श्री'** (सौन्दर्य) है; सुख-दुःखमें एक समान रहनेका नाम ही **'सुख'** है; काम-सुखकी आशाका नाम ही **'दुःख'** है; बन्धन तथा मोक्षतत्त्वके विज्ञानका ज्ञाता व्यक्ति ही **'पण्डित'** है; जिसका देह-दैहिक वस्तुओंमें 'मैं-मेरा' का भाव है, वही **'मूर्ख'** है; निवृत्तिमार्ग (कृष्णमें आसक्ति

"तुम्हारे लिए मेरी यही आज्ञा है कि जीवोंके मङ्गलाकाङ्क्षी बनकर तुमलोग अनुक्षण श्रीनामकी महिमाका कीर्तन करो। उस नामकी महिमाको श्रवणकर दुर्गतिसम्पन्न लोगोंकी जो सुकृति एकत्रित होगी—नामके माहात्म्यके प्रति उनके हृदयमें जिस विश्वासका सञ्चार होगा, उसीके फलसे नामकी कृपाके द्वारा जन्म-जन्मान्तरमें उनकी शुद्धभक्तिधर्ममें निष्कपट श्रद्धा उदित होगी।"

प्राप्त करानेमें समर्थ मार्ग) ही सुपथ है अथवा कृष्णकी आज्ञाका पालन करना ही **'सुपथ'** है; चित्तकी बहिर्मुखता अर्थात् प्रवृत्तिमार्ग ही **'कुपथ'** है; सत्त्वगुणका उदय ही **'स्वर्ग'** है; तमोगुणकी वृद्धिका नाम ही **'नरक'** है; कृष्ण ही एकमात्र **'बन्धु'** तथा **'गुरु'** हैं; मनुष्य शरीर ही **'गृह'** है; गुणोंसे युक्त व्यक्ति ही **'धनी'** है; असन्तुष्ट व्यक्ति ही **'दरिद्र'** है; अजितेन्द्रिय व्यक्ति ही **'कृपण'** है; जो प्राकृत विषयोंमें अनासक्त हैं, वे ही **'स्वाधीन'** हैं; जो प्राकृत विषयोंमें आसक्त हैं, वे ही **'पराधीन'** हैं।"

(प्रमाणनिर्देश, श्रीभागवतार्क मरीचिमाला, १/४४-४७)

**प्रश्न ४—क्या शुभाशुभ फलके लिए अदृष्ट (भाग्य) उत्तरदायी है?**

**उत्तर—**"जबतक समय मन्द रहता है, तबतक सुविधा नहीं देखी जाती; परन्तु जब अच्छा समय आता है, तो सर्वत्र अच्छा ही होता है।"

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका आत्मचरित)

**प्रश्न ५—'ऍंचड़ेपाका' किसे कहते हैं?**

**उत्तर—**"आजकल जनसमाजमें एक ऐसे रोगका विस्तार हो गया है कि मात्र 'क', 'ख' लिखना सीख जाने पर ही तुरन्त एक अल्पायु बालक भी गुरुकी भाँति उपदेश देने लगता है—इसीको 'ऍंचड़ेपाका' कहते हैं।"

(समालोचना, सज्जन-तोषणी, ६/४)

**प्रश्न ६—आधुनिक समाजमें किसे विद्वान् समझा जाता है?**

**उत्तर—**"प्राचीन मत या विचारोंका खण्डन करनेवालेको ही आजकल विद्वान् समझा जाता है।"

(नूतन-पत्रिका, सज्जन-तोषणी, ४/१)

**प्रश्न ७—वागाडम्बर तथा पाण्डित्यमें क्या भेद है?**

**उत्तर—**"वागाडम्बर अर्थात् वाणीका आडम्बर तथा पाण्डित्य अर्थात् वास्तविक विद्वत्ता—ये दोनों पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं। पाश्चात्य पण्डितोंका जितना वागाडम्बर है, वह पाण्डित्य नहीं है। भारतवर्षके ग्रन्थकारोंमें वागाडम्बर बहुत ही कम है, किन्तु कम शब्दोंमें सारवस्तु प्रस्तुत करनेका गुण अधिक है। अल्प आयुके युवक स्वाभाविक रूपसे ही पाण्डित्यकी अपेक्षा वागाडम्बरके पक्षपाती होते हैं।"

(सम्प्रदाय-प्रणाली, सज्जन-तोषणी, ४/४)

**प्रश्न ८—क्या केवल आयुको ही वैराग्यके अधिकार का मूल कहा जा सकता है?**

**उत्तर—**"केवल आयुको ही वैराग्यके अधिकारका मूल नहीं कह सकते। अनेक व्यक्ति वृद्ध होने पर भी मन-ही-मनमें बालकोंकी भाँति उछलकूद करते रहते

हैं। आयु अधिक हो गयी है, दाँत नहीं हैं, परन्तु चाँदीके दाँत लगवा लेते हैं; केश श्वेत हो गये हैं, परन्तु उन्हें रङ्ग द्वारा काला कर लेते हैं। इस प्रकार वृद्ध होनेपर भी युवाओंकी भाँति विलास करनेमें व्यस्त रहते हैं। जब वृद्ध होनेपर भी उन लोगोंमें वैराग्य नहीं आया, तो आयुको वैराग्यका मूल कारण कैसे मान सकते हैं?"

(मर्कट वैराग्य, सज्जन-तोषणी, ८/१०)

### प्रश्न ९—धारणा, अनुभूति तथा युक्ति किसे कहते हैं?

**उत्तर**—"विषयोंके साथ इन्द्रियोंका साक्षात्कार होनेपर इन्द्रियरूपी द्वारसे विषयोंका प्रतिबिम्ब हृदय(चित्) में प्रवेश करता है। वहाँपर कोई एक अन्तरेन्द्रिय [मन] उस प्रतिबिम्बको स्थान प्रदानकर सुरक्षित रखती है; इस वृत्तिको **'धारणा'** कहते हैं। तत्पश्चात् उस अन्तरेन्द्रियकी दो वृत्तियोंके द्वारा धारण किए भावोंकी सङ्कल्प तथा विकल्प साधनाके द्वारा कल्पित सभी पदार्थोंकी **'अनुभूति'** होती है। वह अन्तरेन्द्रिय उन समस्त पदार्थोंके ऊपर अपना साम्राज्य विस्तार करके उसके विषयमें अच्छे-बुरेका विचार करती है। उस विचारको **'युक्ति'** कहते हैं। इस समस्त प्रक्रियाका विशेष विचार करनेपर इसे इन्द्रियमूलक कहा जाता है।"

(तत्त्व-सूत्र, प्रथम सूत्र)

### प्रश्न १०—शुद्धयुक्ति तथा मिश्रयुक्ति किसे कहते हैं?

**उत्तर**—"युक्ति दो प्रकारकी होती है—शुद्धयुक्ति तथा मिश्रयुक्ति। शुद्ध आत्माकी चित्-आलोचनाकी वृत्तिको शुद्धयुक्ति कहते हैं, यह निर्दोष तथा आत्माका स्वाभाविक धर्म है। जड़बद्ध आत्माकी स्वाभाविक वृत्तिके जड़भावमिश्र विकारको 'मिश्रयुक्ति' कहते हैं। वह दो प्रकारकी होती है—कर्ममिश्र तथा ज्ञानमिश्र; उसका अन्यतम (दूसरा) नाम 'तर्क' है, जो निन्दनीय है।"

(तत्त्व-विवेक, प्रथम अनुच्छेद, १८)

### प्रश्न ११—क्या जड़तत्त्वविद् पण्डितोंके लिए चिद्-तत्त्वका मींमासक होनेकी दाम्भिकता पोषण करना उचित है?

**उत्तर**—"जिस प्रकार अनुभवहीन चिकित्सक अनुपयुक्त औषधिके द्वारा शारीरिक पीड़ाको सम्पूर्णरूपसे दूर करनेकी प्रतिज्ञा करता है, उसी प्रकार नये-नये जड़-तत्त्वविद् पण्डिताभिमानी लोग मनुष्यजीवनके समस्त गुह्यतत्त्वोंको जाननेके लिए क्षुद्र जड़वादके अन्तर्गत आनेवाली विधियोंका प्रयोग करते हैं। वे प्रमादजनित क्लेशोंको न समझकर आधाररहित स्वप्नवत् विद्यापर विश्वास करके समस्त विषयोंके तथ्योंको समझनेकी चेष्टा करते हैं।"

(धर्म तथा विज्ञान, सज्जन-तोषणी, ७/७)

### प्रश्न १२—किन कारणोंसे दार्शनिक स्वभाववाले व्यक्ति भी श्रीमद्भागवतके यथार्थ मर्मको समझनेमें असमर्थ होते हैं?

**उत्तर**—"Men of brilliant thoughts have passed by the work (The Bhagavat) in quest of truth and philosophy, but the prejudice which they imbibed from its useless readers and their conduct prevented them from making a candid investigation."

["प्रतिभाशाली विचारकोंने सत्य और दर्शनके अन्वेषणमें इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थका अवलोकन किया है, परन्तु इस ग्रन्थके निरर्थक अनुशीलनकर्त्ताओंसे प्राप्त पूर्वाग्रह और ऐसे पाठकोंके आचरणने उन्हें निष्पक्ष अध्ययन करनेमें बाधा प्रदान की है।"]

(The Bhagabat: Its Philosophy, Its Ethics and Its Theology)

क्रमशः

[श्रील भक्तिविनोद वाणी-वैभवसे अनुदित]

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर
'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

# श्रीश्रीसरस्वती-संलाप

## श्रील प्रभुपाद और अध्यापक श्रीयुक्त फणीभूषण अधिकारी

(वर्ष २१, संख्या ५-९ से आगे)

**अध्यापक**—शङ्कर, मध्व, रामानुज—वे जो भी कहें, सभी एकदेशीय हैं; उन्होंने अपनी सुविधाके अनुसार ही वचन कहे हैं। वे अधिकतर पुराणोंकी कथाएँ ही कहते हैं। केवल एक व्यक्तिने एकमात्र श्रुतिको स्वीकार किया है—जिसे बहुत लोग जानते भी नहीं—वे हैं "भास्कराचार्य"।

**श्रील प्रभुपाद**—भास्कराचार्य द्वारा लिखित मत किस समयका है, क्या आप जानते हैं?

**अध्यापक**—शङ्कर [आविर्भाव काल—अष्टम शताब्दी] के पश्चात्, रामानुज [आविर्भाव काल—एकादश शताब्दी] से पूर्व।

**श्रील प्रभुपाद**—ऐसा नहीं है। यह भास्कर[१] जिसके विषयमें आप कह रहे हैं, वह नहीं है जिस भास्करके मतके विषयमें 'वेदान्त-संग्रह' में बताया गया है। यह तो एक आधुनिक व्यक्ति है, और यह पुस्तक भी पुरातन भास्करके नामपर आरोपित है। यह पुस्तक मेरे पास है।

**अध्यापक**—यह व्यक्ति चाहे कृत्रिम हो अथवा वास्तविक—उसके द्वारा दी गयी व्याख्या ही वेदान्तकी true interpretation (यथार्थ व्याख्या) है।

**श्रील प्रभुपाद**—यह व्याख्या क्योंकि आपके taste से मेल खाती है, इसीलिये आपने इसे स्वीकार किया है। यह तो डॉ. सिल्वेन लेवी[२] और गेटे[३] का मतवाद मात्र है।

---

१ वेदान्तके सन्दर्भमें दो भिन्न-भिन्न भास्करोंका परिचय मिलता है—भास्कर (भेदाभेद विचार): यह ९वीं शताब्दीके वेदान्त दार्शनिक हैं जिन्होंने ब्रह्मसूत्रोंपर एक टीका लिखी और अद्वैत वेदान्तमें मायाकी अवधारणाका विरोध करनेके लिए जाने जाते हैं। भास्कराचार्य द्वितीय (१२वीं शताब्दी): गणितज्ञ और खगोलशास्त्री, जिन्होंने लीलावती और बीजगणितकी रचना की, प्रायः अपने लेखनमें वेदान्ती विश्वदृष्टिसे जुड़े हुए पाए जाते हैं।

२ सिल्वेन लेवी (१८६३-१९३५) एक प्रभावशाली फ्रांसीसी बुद्धिजीवी और लेखक थे और वे प्राच्य अध्ययन तथा भारतीय प्रदर्शन कलाके विशेषज्ञ थे। उन्होंने संस्कृत भाषा और भारतीय धर्मोंका अध्यापन किया। लेवीकी पुस्तक 'थिएटर इंडियन' भारतीय प्रदर्शन कलाके विषयपर एक महत्वपूर्ण कृति है।

३ योहान वुल्फगांग फान गेटे (Johann Wolfgang von Goethe) (१७४९-१८३२) जर्मनीके एक सुविख्यात लेखक, दार्शनिक और विचारक थे। उन्होने कविता, नाटक, धर्म, मानवता और विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रोंमें कार्य किया। गेटेने वेदान्त दर्शनको मानवीय चिन्तनका सर्वोच्च संश्लेषण

**अध्यापक**—डॉ. सिल्वेन लेवीका मत मैं नहीं जानता।

**श्रील प्रभुपाद**—गेटेकी पुस्तक तो आपने अवश्य ही देखी होगी।

**अध्यापक**—नहीं, उसे भी मैंने सम्पूर्ण रूपसे नहीं देखा है।

**श्रील प्रभुपाद**—उन्होंने कहा है कि शङ्करका मत ही वेदान्तका अनुसरणीय मत है। भास्करकृत भाष्यमें महाप्रभुके अचिन्त्य-भेदाभेद सिद्धान्तको स्वीकार किया गया है।

**अध्यापक**—एकमात्र विज्ञान-भिक्षुने[४] ही भास्कर-भाष्यका मत स्वीकार किया है; वे भी एक भक्त हैं।

**श्रील प्रभुपाद**—वे कभी भी भक्त नहीं हैं।

**अध्यापक**—Intelligence के बिना, सम्यक् विचार किये बिना, knowledge के बिना क्या 'भक्ति' हो सकती है?

**श्रील प्रभुपाद**—[भक्तिके लिये knowledge आवश्यक है] But the knowledge should be Absolute. एक-एक व्याख्याकारने एक-एक दृष्टिकोणके आधारपर श्रुतिकी व्याख्याको regulate (नियन्त्रित) किया है [अर्थात् श्रुतिके असीमित विस्तारकी अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार व्याख्या करके किसीने तो उसका अपूर्ण वर्णन किया है एवं किसीने उसकी विकृत व्याख्या भी की है तथा किसी अन्यने उसकी अति सुन्दर पूर्ण व्याख्या भी की है। परन्तु किसी-किसीने तो बिना किसी आधारके मनोकल्पनाको ही वेदान्तकी अनुभूतिके रूपमें मान किया है।] यदि किसी व्याख्याकारका कोई विशुद्ध दृष्टिकोण ही न हो, तो क्या उसे 'पागल' नहीं कहा जायेगा?

**अध्यापक**—दृष्टिकोण आयेगा कहाँसे?

**श्रील प्रभुपाद**—एक प्रकारका दृष्टिकोण आम्नाय-परम्परासे आता है, और एक अन्य प्रकारका दृष्टिकोण आता है तर्क-पथसे।

**अध्यापक**—वह तर्क-पथ भी तो श्रुति ही है।

**श्रील प्रभुपाद**—तर्क-पथके अनुयायी तर्क-पथको भी 'श्रुति' कहते हैं, परन्तु हम उसे प्रच्छन्न-श्रौत अथवा नाममात्रका श्रौतमत ही कहेंगे। श्रीशङ्कराचार्यके साथ श्रीरामानुज और श्रीमध्वका contention (विवाद) कहाँ है? तर्कपथावलम्बी कहते हैं—शङ्करमतावलम्बी आरोहवाद मानते हैं; अवतारवाद नहीं मानते। जब साधु चोरका परिचय देते हुए हमें बता देते हैं—'वह चोर है', तब चोर भी स्वयंको बचानेके लिए साधुके विषयमें ही कह देता है—'वह चोर है'।

**अध्यापक**—हाँ।

**श्रील प्रभुपाद**—श्रुतिके मन्त्र परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं—इसलिये यह प्रमाणित करनेके लिये कि उनके समन्वयका एक system (प्रणाली) है, बादरायण-सूत्र अर्थात् वेदान्त सूत्रका प्राकट्य हुआ है। आपने जिस प्रकारसे दिल्ली कॉलेजके पण्डितकी बात कही—हम उस प्रकारकी व्याख्याकी बात नहीं कर रहे हैं। [अर्थात् वेदान्तकी ऐसी व्याख्या जो केवलमात्र प्राचीन प्रचलित पद्धति पर आधारित है, और जिसे युक्तिद्वारा प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता, ऐसी व्याख्या हमें स्वीकार्य नहीं है।] वह तो अपच(बदहजमी) है—अपनी pedantic style (पाण्डित्याभिमानी शैली) दिखानेके लिए गोलमोल करके अपनी भूल-त्रुटिको छिपानेकी चेष्टा है। [यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति अपने पाण्डित्यको ही सर्वोपरि मानकर, शास्त्रके सिद्धान्तोंके विकृत अर्थको अपनी मनोकल्पनाके आधार पर प्रस्तुत करे।] इसे 'विप्रलिप्सा' कहते हैं—अर्थात्

---

माना, जहाँ "पदार्थ या प्रकृतिके विभिन्न रूपोंके सभी भेद भ्रम हैं"; यह दृष्टिकोण अद्वैत वेदान्तकी इस अवधारणासे मेल खाता है कि केवल ब्रह्म ही वास्तविक है और संसार मायावी है।

४ विज्ञानभिक्षु (१५५०-१६००) भारतके दार्शनिक थे। वे एक प्रकारसे सांख्यके अन्तिम आचार्य हैं। इन्होंने ही सांख्यमतमें ईश्वरवादका समावेश किया था। इन्होंने तीन दर्शनोंपर भाष्य-ग्रन्थ लिखे हैं—सांख्यप्रवचनभाष्य (सांख्यसूत्र); योगवार्तिक (व्यासभाष्य), विज्ञानामृतभाष्य (ब्रह्मसूत्र)।

छलनेकी प्रवृत्ति। शब्दोंसे, भावोंसे, emotional temper (भावुकता) से, या तर्क-छलसे लोगोंको ठगना! क्या यह निरपेक्षता है! तुरीय अवस्थाके[५] जो सब वाक्य हैं, उनको मैं three dimension (तीन-आयाम) [अर्थात् इस जगत्‌में अनुभव योग्य तीन अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति]के अन्तर्गत कर रहा हूँ। मैं तो भवनके दूसरे तले पर गया ही नहीं, परन्तु यदि मैं सोचता हूँ कि मेरे हाथ दूसरे तले पर पहुँच गये हैं और मैंने वहाँकी वस्तुको पकड़ लिया है! मेरे पास जो Present equipment (वर्तमान उपकरण) हैं, वे पारमार्थिक जगत्‌की वस्तुको माप ही नहीं सकते—फिर भी यदि मैं उस वस्तुको वहन करनेका दावा करूँ तथा उस वस्तुको प्रदान करनेके नामपर जोड़-तोड़ करूँ, तो वह विप्रलिप्सा है। जो वैकुण्ठ-राज्यसे नहीं आया है, वह यदि उस विषयपर कथा कहेगा, तो उसके वाक्योंमें भ्रम प्रवेश करेगा ही करेगा। जिसे हम 'अभिज्ञता' [अर्थात् विषयवस्तुका यथार्थ ज्ञान] मान रहे हैं, वह हमारी रुचिके अनुकूल मत मात्र है।

**अध्यापक**—जो लोग ज्ञानकी ओर जा रहे हैं, उनके लिये तो वही उपाय natural होगा। मैं जो feel करता हूँ, वही कहूँगा—हो सकता है उसमें त्रुटि हो।

**श्रील प्रभुपाद**—जिसमें त्रुटि होनेका सन्देह है—उसे आप वास्तविक सत्यका आधार कैसे बनाएँगे? आपके defective organ (दोषपूर्ण इन्द्रिय) से जो समझमें आ रहा है—वह दोषरहित कैसे होगा? शङ्कराचार्यके गुरु गोविन्दपाद और उनके गुरु गौड़पाद—सांख्यकारिकाके टीकाकार थे।

**अध्यापक**—शङ्कराचार्यके गुरुका मत तो उनसे बहुत भिन्न है—वे तो सांख्यवादी नहीं थे।

**श्रील प्रभुपाद**—शङ्कराचार्यकी टीकाओंसे यह स्पष्ट दिखाया जा सकता है कि उनकी रचनाओंमें निरीश्वर सांख्यका मायावाद प्रच्छन्न रूपमें वर्तमान है।

**अध्यापक**—तब तो अनुभूति प्राप्त नहीं होने तक कोई भी सत्य वचन कह ही नहीं सकता।

**श्रील प्रभुपाद**—भ्रम, प्रमाद आदि दोषोंसे दूषित जीवकी अनुभूति पर्याप्त नहीं है। वैष्णवजन जो कुछ कहते हैं, वह न तो उनकी अपनी रचना है, न कल्पना है—वे सब कुछ गुरु-पादपद्मकी ओर सङ्केत करते हैं (अर्थात् वे यह प्रमाणित कर देते हैं कि देखिये! हमारे किस गुरुवर्गने यह बात कौनसे ग्रन्थमें कही है)। गुरु कोई पाँच-दस नहीं होते।

"*मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः॥*"

[मेरे प्रभु, आराध्यदेव ही समस्त जगत्‌के प्रभु, ईश्वर हैं, मेरे गुरु ही समस्त जगत्‌के गुरु हैं।]

Absolute Truth requires no challenge from anybody- [परम सत्य किसीके द्वारा चुनौती दिये जानेपर स्वयंको प्रकाशित नहीं करते, अपितु वह स्वेच्छासे ही प्रकटित होते हैं।]

**अध्यापक**—ऐसे गुरु तो किसी सीमाके अन्तर्गत नहीं हो सकते—वे ही प्रत्येक धर्ममें गुरु हो सकते हैं।

**श्रील प्रभुपाद**—इन सब धर्म-टर्मको अर्थात् अन्य सब तथाकथित धर्मोंकी बात रहने दीजिये। जैसे गुरु-पादपद्म अद्वितीय हैं, वैसे ही धर्म भी एक ही है—उसका नाम है आत्मधर्म। आत्मधर्मके अतिरिक्त जो कुछ है, वह देह और मनका ही धर्म है। जगत्‌में देहधर्म और मनोधर्मके अनेक मत और अनेक मार्ग सुननेको मिलते हैं—परन्तु आत्मधर्मके सम्बन्धमें वे सब बातें प्रयोज्य नहीं हैं। आत्मधर्म अद्वितीय है, किन्तु उसमें विचित्रताका अभाव नहीं है—वह नीरस धर्म नहीं है। वह समस्त भौतिक आवरणों एवं ग्रन्थियोंसे रहित, विशुद्ध निर्मल आत्माकी स्वाभाविक, स्वच्छन्द वृत्ति है। आत्मधर्मकी

५ तुरीय (परे की) अवस्थाः यह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिके पश्चात् चौथी अवस्था है, जिसे आत्माका वास्तविक स्वरूप माना जाता है। इस अवस्थामें व्यक्ति जागृत रहते हुए भी शान्त, मौन और निर्विकल्प समाधिमें होता है।

ओर अग्रसर होनेवाले मार्गपर अन्यान्य धर्मोंके विचारोंको केवल कुछ अनुकूल रूपसे ग्रहण किया जा सकता है; किन्तु आत्मधर्मके जो विकृत प्रतिबिम्ब हैं, उन्हें किसी भी रूपमें ग्रहण नहीं किया जा सकता। ऐसे विकृत प्रतिबिम्ब केवलमात्र सहस्रों भिन्न-भिन्न पथोंकी सृष्टिकर 'जितने मत, उतने पथ' की पहेलीका प्रदर्शन करते हैं। वास्तविक सत्यका प्रवाह एक conduit pipe (वाहक प्रवाह प्रणाली) से प्रवाहित होकर आता है।

**अध्यापक**—ईसाई लोग भी कहते हैं कि उनके पास वह conduit pipe है।

**श्रील प्रभुपाद**—ठीक है—यदि वह pipe वास्तविक सत्यसे जुड़ी है, तो उसके माध्यमसे भी सत्य आ सकता है। परन्तु यदि उस pipe से शत-प्रतिशत सत्य प्रवाहित नहीं होता—कहीं मार्गमें वह ढक जाता है, कुछ सङ्कुचित हो जाता है—तब सहस्रों दुकानदार अपनी-अपनी दुकानकी वस्तुको ही 'एकमात्र शुद्ध वस्तु' कहकर परिचय प्रदान करेंगे तथा यही मानना पड़ेगा कि सबकी वस्तुएँ ही वास्तविक रूपमें शुद्ध हैं तथा समन्वयके नामपर सभीको एक समान ही मानना होगा, अथवा क्योंकि सभी अपनी दुकानकी वस्तुको ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ कह रहे हैं, अतएव जगत्में कहीं भी एकमात्र शुद्ध, वास्तविक वस्तु उपलब्ध ही नहीं है अथवा सभी धर्म ही एक समान हैं—ऐसा भ्रमयुक्त, नास्तिकतापूर्ण मत ही स्वीकार करना होगा, यह विचार क्या युक्तिसङ्गत है?

**अध्यापक**—लोग अपनी श्रद्धा, भक्ति और रुचिके आधारपर ही धर्मको स्वीकार करेंगे।

**श्रील प्रभुपाद**—यह नास्तिकोंका कथन है। एक बहिर्मुखी व्यक्तिकी श्रद्धा, भक्ति और रुचि—सब बहिर्मुखी होती हैं। जिन लोगोंने पहलेसे ही वास्तविक सत्यको निर्विशेष मानकर निश्चित कर लिया है, वे ही ऐसे वचन कहते हैं। परन्तु जो परमेश्वरकी निरङ्कुश स्वतन्त्रताको स्वीकार करते हैं, वे जानते हैं कि परमेश्वरकी निर्विशेष रूपमें अभिव्यक्ति एक असङ्गत, नीरस धारणा है। परमेश्वर चिद्विलासी हैं। मनुष्य अथवा जीव अपनी बहिर्मुखी श्रद्धा, रुचि अथवा भक्तिके द्वारा कभी भी वास्तविक सत्यको ग्रहण नहीं कर सकता। जब वास्तविक सत्य कृपा करके स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तभी वे अपने विषयमें सबको अवगत करा देते हैं। कौन-सी वस्तु वास्तविक सत्यके रूपमें ग्रहणीय है—यह चैत्य-गुरु निष्कपट सेवोन्मुख जीवको कृपा करके जना देते हैं।

**अध्यापक**—चैत्यगुरु कौन हैं?

**श्रील प्रभुपाद**—वही व्यष्टि परमेश्वर—Individual Godhead—जो प्रत्येक अणुचित् जीवके भीतर स्थित हैं। जिनका उल्लेख "द्वा सुपर्णा" श्रुति-मन्त्रमें[६] है, वही चैत्यगुरु हैं।

**अध्यापक**—उपनिषद्का जो वाक्य आपने कहा—वह तो केवलमात्र आशीर्वाद सूचक कथन है।

**श्रील प्रभुपाद**—उसी मन्त्रसे मैं Personality of Godhead (साकार भगवान्) को प्रमाणित करना चाहता हूँ। उनमें initiative लेनेकी faculty है अर्थात् स्वतन्त्र रूपसे पहल करनेकी सर्वोच्च क्षमता है—यही मैं कह रहा हूँ। ईश्वर स्वतन्त्र हैं—वे ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्तिके परिचालक पूर्ण विग्रह हैं। Knowing, feeling और willing

---

६ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
मुण्डकोपनिषद् (३.१.१) एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् (४.६)

क्षीरोदकशायी पुरुष (परमात्मा) और जीव इस अनित्य संसाररूप पीपलके पेड़पर दो सखाओंकी भाँति निवास कर रहे हैं, उनमेंसे एक अर्थात् जीव अपने कर्मोंके अनुसार पीपलके फलोंका आस्वादन कर रहा है और दूसरे अर्थात् परमात्मा फलका भोग न कर साक्षीके रूपमें केवल देख रहे हैं।

(ज्ञान, अनुभव एवं इच्छा)—जो हमारे भीतर अल्प मात्रामें है—वह उनमें पूर्ण मात्रामें विद्यमान है। वे ही Fountain-head (मूल-स्रोत) हैं—यह भूलते ही महामाया हमपर आक्रमण करेगी, हमारी विचार करनेकी शक्तिमें भूल कराएगी, असद्-विवेकको ही विवेक कहकर हमें भ्रमित करेगी। सब कुछ ही श्रीकृष्णका है, कृष्णकी सभी शक्तियाँ उन्हींमें हैं। विशुद्ध-सत्त्वमें उनका प्राकट्य, उदय या आविर्भाव होता है। वे कोई ऐतिहासिक जीव-विशेष नहीं हैं, न ही वे तत्-शब्द-वाच्य[७] हैं। कृष्ण जिसपर दया करते हैं, उसका ही हृदय विशुद्ध-सत्त्वसे उज्ज्वल होता है। विशुद्ध-सत्त्वोज्ज्वल हृदय द्वारा दर्शन ही वास्तविक सुदर्शन और वास्तविक सच्चिदानन्द-अनुभूति है। रज-तमसे मिश्रित-सत्त्वयुक्त हृदयकी अनुभूति केवल 'भावनाका मार्ग' अर्थात् भावुकता मात्र है। जब तक इस भावनात्मक-पथको पार नहीं किया जाता, अप्राकृत रसका अनुसन्धान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

**अध्यापक**—जो भगवान्‌का दर्शन करते हैं, क्या वे प्रचार कर सकते हैं?

**श्रील प्रभुपाद**—वही तो मुख्य प्रचारक होंगे। असंख्य प्रचारक उनके ही अनुगामी बनकर प्रचार कर सकते हैं। श्रीव्यासदेवने पूर्णपुरुषके साक्षात्कारके पश्चात् शान्त-चित्त होकर श्रीभागवतका प्रचार किया था। आत्माराम शुकदेव, नवयोगेन्द्र आदि सभीने परिव्राजकके रूपमें आत्मधर्मका प्रचार किया है। शून्य हो जानेका नाम [अर्थात् समुद्रकी एक बूँद पुनः समुद्रमें मिलकर लय प्राप्त कर लेती है, जीव भगवान्‌में मिलकर ब्रह्म हो जाता है, यह] भगवत्-साक्षात्कार नहीं है। हरिकथा-कीर्तनमें ऐसा गुण है कि वह आत्माराम जनोंको भी आकर्षित कर लेता है। परम-मुक्त पुरुष ही हरिकथाका प्रचार करते हुए सर्वत्र भ्रमण करते हैं। श्रीमन्महाप्रभु और उनके पार्षदोंने सर्वत्र हरिकथाका प्रचार किया। हृदयमें सहस्रों questions आएँगे—परन्तु केवलमात्र हरिकथाको ठीकसे श्रवण करनेसे ही सभी प्रश्नोंका उत्तर मिल जाएगा, व्यक्तिको अधीर नहीं होना चाहिये।

**अध्यापक**—अपनी पूर्वकथा और आगे कहिये।

**श्रील प्रभुपाद**—परमेश्वर मायासे आवृत कोई वस्तु नहीं हैं। जैसा सदानन्द योगीन्द्रने 'वेदान्तसार'में कहा है—"*एतदुपहितं चैतन्यं.....ईश्वर इति च व्यपदिश्यते।*"[८] अर्थात्—इस समस्त अज्ञानसे परे वे चेतन पुरुष ही सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सत्, अव्यक्त, अन्तर्यामी, जगत्-कारण और 'ईश्वर' आदि नामोंसे अभिहित होते हैं। (वेदान्तसार ३८)

**अध्यापक**—मायासे ओत-प्रोत ज्ञानसे मुक्त होनेका उपाय क्या है?

**श्रील प्रभुपाद**—केवल विशुद्ध आम्नाय (गुरु-परम्परासे प्राप्त वाणी)के माध्यमसे ही वास्तविक सत्य प्रवाहित होता है। जैसा श्रुतिमें कहा है—

*ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।*
*ब्रह्मविद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥*

मुण्डकोपनिषद् (१.१.१)

"देवताओंमें सर्वप्रथम श्रीब्रह्मा उत्पन्न हुए; जो विश्वके कर्ता और भुवनोंके रक्षक हैं। उन्होंने सभी विद्याओंकी आधारभूत 'ब्रह्मविद्या'को अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वाको प्रदान किया।" इसी शुद्ध आम्नाय-परम्पराका अनुसरण करना चाहिये।

७ श्रीशङ्कराचार्यने 'तत्' शब्द द्वारा परमब्रह्मका जो (विकृत) परिचय प्रदान किया है, परम भगवान् ऐसे 'तत्'-शब्द-वाच्य नहीं हैं। अथवा 'तत्' शब्द द्वारा जिसको भी परिभाषित किया जाता है, उन सभीके मूल परम भगवान् हैं, यह अर्थ है।

८ एतदुपहितं चैतन्यं सर्वज्ञत्व-सर्वेश्वरत्व-सर्वनियन्तृत्वादि गुणकमव्यक्तमन्तर्यामि जगत्कारणमीश्वर इति च व्यपदिश्यते॥]

**अध्यापक**—Old Testament में Jacob के प्रसङ्गमें भी इसी प्रकार आम्नाय-परम्परासे भगवत्-कृपा प्राप्तिकी बात कही गई है।

**श्रील प्रभुपाद**—यदि हम वास्तविक सत्यका अनुसन्धान करेंगे, तो हमें वास्तविक श्रौत-पथ मिलेगा—पूर्ण श्रौत-पन्थाका आम्नाय मिलेगा। और यदि हमारे हृदयमें अन्याभिलाषाएँ रहेंगी, तब जितनी अन्याभिलाषाएँ होंगी, उतना ही अन्याभिलाष-मिश्रित आम्नाय मिलेगा। शौक्र-पथ और श्रौत-पथ, च्युत-गोत्र और अच्युत-गोत्र, आर्थिक आम्नाय और पारमार्थिक आम्नाय—ये सब एक-दूसरेसे भिन्न हैं। हम mental speculation (मनोकल्पना) करनेवालोंकी कोई बात स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं। हम अधिरोहवाद (ascending process) का कोई भी कथन नहीं सुनना चाहते—हम अवरोह-सिद्धान्त (descending process) पर आधारित वचन ही सुनना चाहते हैं। सूर्यकी किरणें साक्षात् सूर्यसे निकलकर, बिना किसी व्यवधानके सीधे, हमारे नेत्रोंपर पड़ती हैं—हम उन्हीं किरणोंकी सहायतासे सूर्यको और समस्त सृष्टिकी विविधताको देखते हैं। परन्तु यदि वातावरणमें नमी हो, तब सूर्यकी किरणोंकी दिशामें कुछ परिवर्तन हो जाता है तथा वे कुछ भिन्न रूपमें आती हैं। यदि तर्क-पथकी कोई बात न रहे, तो शब्द-ब्रह्म direct अर्थात् बिना किसी मिश्रणके हमारे कानोंमें आकर उपस्थित होता है, और यदि कोई उस शब्द-ब्रह्मको corroborate (पुष्ट या प्रतिष्ठित) करना चाहे, तब उसे उस शब्द-ब्रह्मको mundane horizon (भौतिक जगत्) के भीतर locate (निर्देश) करना पड़ता है। [अर्थात् यहाँकी कुछ युक्तियोंके द्वारा भी उस शब्द-ब्रह्मका सुष्ठुरूपमें वर्णन करना पड़ता है।]

**अध्यापक**—शब्द तो सुन लिया—परन्तु उसके अर्थका अनुभव कैसे होगा?

**श्रील प्रभुपाद**—स्वयं शब्द ही निज अर्थका प्रकाश करेगा। शब्दकी व्याख्या करनेकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं—अज्ञ-रूढ़ि-वृत्ति और विद्वद्-रूढ़ि-वृत्ति। जब महाप्रभु विद्वद्-रूढ़ि-वृत्तिका प्रकाश करनेका अभिनय कर रहे थे, तब विद्यार्थी बालकोंको व्याकरण पढ़ाते समय प्रत्येक—प्रातिपदिक शब्द[१], धातु, सूत्र—सभीकी कृष्ण-परक व्याख्या कर रहे थे। उनके लिए सब कुछ कृष्ण ही था। इतना ही नहीं, जब वे नीलाचलकी ओर दौड़ रहे थे, तब जहाँ सामान्य लोग वन, उपवन, पहाड़, गाय आदि देख रहे थे, वहाँ महाप्रभु देख रहे थे—

*वन देखि भ्रम हय एइ वृन्दावन।*
*शैल देखि मन हय एइ गोवर्धन॥*
*जाँहा नदी देखे ताँहा मानये कालिन्दी॥*

चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला (१७/५५-५६)

[श्रीमन्महाप्रभुको वन देखकर लगता था है कि यह वृन्दावन है तथा पर्वत देखकर लगता था कि यह गोवर्धन है। जहाँ कहीं भी महाप्रभु किसी नदी को देखते, वे उसे कालिन्दी मानने लगते।]

यहाँ 'भ्रम' का अर्थ यह नहीं कि महाप्रभु कोई भूल दर्शन कर रहे थे अथवा वे भ्रमित थे, वास्तवमें उन बहिर्मुख लोगोंको, जो साधारण-विचार ही किया करते हैं, उनको ही महाप्रभुका ऐसा व्यवहार भ्रम

१ प्रातिपदिक संस्कृत व्याकरणमें वह अर्थवान् मूल शब्द है जो धातु (क्रिया) या प्रत्यय नहीं है। यह संज्ञा, सर्वनाम या विशेषणका वह आधार रूप है जिसपर विभक्ति या प्रत्यय (जैसे सु, औ, जस्) लगाकर 'पद' (रामः, पुस्तकम्) बनाया जाता है। इसे शब्दोंकी 'प्रकृति' भी कहते हैं।

जैसा प्रतीत हो रहा था—यही बात कविराज गोस्वामी समझा रहे हैं।

**अध्यापक**—विद्वद्-रूढ़ि-वृत्ति तो उनके साथ रहनेसे ही आयेगी।

**श्रील प्रभुपाद**—वह विद्वद्-रूढ़ि-वृत्ति शब्द-ब्रह्ममें ही निहित है।

**अध्यापक**—मेरी capacity (ग्रहण करनेकी क्षमता) कहाँसे उत्पन्न होगी?

**श्रील प्रभुपाद**—क्षमता भी शब्द-ब्रह्मसे ही उत्पन्न होगी।

**अध्यापक**—मुझे भी तो प्रस्तुत होना पड़ेगा।

**श्रील प्रभुपाद**—श्रीगुरुदेवकी सेवाके द्वारा ही उनकी कृपाकी प्राप्ति होती है और प्रस्तुत हुआ जाता है। (इस प्रसङ्गमें श्रील प्रभुपादने 'श्री' सम्प्रदायकी वरकलइ और तेङ्कलइ शाखाओंके विचार तथा बरबरमुनि द्वारा उन दोनोंके तर्क-समाधानका प्रसङ्ग बताया।)

**अध्यापक**—श्रीचैतन्यदेवने कहा है—केवल 'नाम' करो।

**श्रील प्रभुपाद**—'नाम करने' का अर्थ है—to stretch hand and to approach (हाथ बढ़ाना और उनकी ओर अग्रसर होना)।

**अध्यापक**—तो इसका अर्थ यह हुआ—भक्ति और श्रद्धासे उन्हें पुकारना होगा; पुकारते-पुकारते वे ही विद्वद्-रूढ़ि-वृत्तिको प्रकट करेंगे।

**श्रील प्रभुपाद**—भगवान् हमारे भीतरमें चैत्यगुरुके रूपमें और बाहर महान्त-गुरुके रूपमें विराजमान रहते हैं। *"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"*। यदि मैं निष्कपट हूँ, तो वे भी मेरा निष्कपट महान्त-गुरुसे परिचय करा देंगे। हम सहस्रों लोग आवेदन लेकर उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु स्वीकार करनेवाले स्वामी वे एक ही हैं। वे क्यों हमारे आवेदनको स्वीकार नहीं करेंगे—यह हम नहीं कह सकते। वे हमारे बगीचेके माली तो हैं नहीं। हमें धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी होगी—अन्याभिलाष-शून्य होकर उनकी सेवाके उन्मुख होना होगा।

**अध्यापक**—अत्यन्त सुन्दर बात!

**श्रील प्रभुपाद**—(राय साहेब प्राणकृष्ण सेनकी ओर देखकर और प्रोफेसर अधिकारीको दिखाते हुए) "ये महा-मनीषी हैं—दर्शन-शास्त्रके असाधारण अध्यापक, संस्कृतके डी.लिट. हैं; और मैं महा-मूर्ख हूँ।"

**अध्यापक**—"अब आप और लज्जित मत कीजिये—हम आपके सामने कुछ भी नहीं हैं। आप श्रेष्ठ दार्शनिक पण्डित हैं, और उसपर भी तृणादपि सुनीच—एक महान वैष्णव हैं। आपके अतुलनीय पाण्डित्यसे मैं स्तब्ध और विस्मित हूँ। भक्ति और पाण्डित्यका ऐसा मणिकाञ्चन-संयोग मैंने और कहीं नहीं देखा। अब कृपा करके अपना लीजिये, थोड़ा रस दीजिये—अब तर्ककी और आवश्यकता नहीं है।"

उनकी इस बातको श्रवण करके श्रील प्रभुपादने श्रीमद्भागवत (७/५/२३-२४) के प्रसिद्ध श्लोकों *"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं इति पुंसार्पिता विष्णौ"* का उच्चारण करनेके पश्चात् कहा—"शरणागति ही हमारा लक्ष्य है।"

यह कहकर श्रील प्रभुपादने श्रीमान ईशानदास 'भक्तिविग्रह' प्रभुको कीर्तन करनेके लिये कहा। तब श्रीमान् ईशानदासने श्रील ठाकुर भक्तिविनोदके शरणागति ग्रन्थसे यह गीत गाया—

*मानस देह गेह जो किछु मोर।*
*अर्पिलु तुया पदे नन्दकिशोर॥*

(श्रील प्रभुपाद और अध्यापक श्रीमान् फणीभूषण अधिकारीके मध्य सम्वाद समाप्त)

[श्रीसरस्वती-संलापसे अनुदित]

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पत्रावली

(पत्र-२४)

# भोगी, देहारामी, आलसी तथा क्रोधी व्यक्ति मठवास तथा हरिसेवाके अनधिकारी

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति
श्रीदेवानन्द गौड़ीय गठ
तेघरीपाड़ा,
पोः-नवद्वीप (नदीया) प. ब.
दिनाङ्क-१२/६/१९६३

मेरे स्नेहके पात्र,

आपका दिनाङ्क ७/६/६३ को भेजा गया पत्र पाकर अत्यन्त दुःखी हुआ। वर्तमान समयमें ऐसे लोगोंका अत्यन्त अभाव हो गया है, जो मठकी भलीभाँति परिचालना कर सकें। सभी लोग अपना सुख चाहते हैं। जब शय्यापर लेटे हुए ही खानेके लिये मिल जाता है, तब शय्यासे उठकर बैठकर भोजन करना कष्टकर प्रतीत होता है। कोई यदि चबाकर उनके मुखमें डाल दे, तब तो उनके दाँतोंका परिश्रम भी कम हो जाय।

वर्तमान समयमें क्रोधी व्यक्तियोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। क्रोधके कारण ही निज पिता-माता, स्त्री-पुत्रोंके साथ रहना ऐसे व्यक्तियोंके लिये सम्भव नहीं हो पाया है। काम-क्रोधने सबको ग्रास कर लिया है। ऐसी अवस्थामें आप ही क्या कर सकते हैं तथा मैं भी क्या कर सकता हूँ? यदि ऐसे लोग अपने घरमें रहकर संसारी कार्य ठीकसे कर पाते तो मठमें आते ही क्यों? संसारिक कार्योंमें अक्षम होनेके कारण ही अनेक लोग मठमें आ जाते हैं। अधिकतर लोग 'पि-पु-फि-सो'[१] के दलवाले ही हैं।

[१] दो आलसी व्यक्ति घरके आङ्गनमें सो रहे थे। सोते-सोते जब दोपहर हो गयी, तो सूर्यकी गरमीसे पीठ जलने लगी। तब एक व्यक्ति बहुत ही कष्टसे दूसरेसे बङ्गला भाषामें बोला—"पि पु" अर्थात् पिठ पुड़ेछे, मेरी पीठ जल रही है। यह पूरी बात कहनेमें भी उसे आलस्य हो रहा था। यह सुनकर दूसरे आलसीने भी वैसा ही उत्तर दिया—"फि सो" अर्थात् फिरे सो,—दूसरी ओर मुख करके सो जा।

आपको देखकर ही मैंने आसाममें मठ बनाया था। आप वहाँसे चले आना चाहते हैं—यह अत्यन्त निराशाका विषय है। मेरा तो यही मत है कि आप जितने दिन जीवित हैं, वहींपर रहें। नवद्वीपमें स्थान क्रय हेतु रुपये अभी भी रखे हुए हैं। मेरी इच्छा है कि मैं उन्हें आपके पास वापस भेज दूँ। हरिसेवा ही जीवनका उद्देश्य है। हरिसेवाके लिए आपदा-विपत्तिका आना तो मङ्गलजनक है। सेवक उनसे छुटकारा प्राप्त करना क्यों चाहेगा?

**** बहुत अच्छा बालक था। वह मठमें स्थायी रूपसे नहीं रह पाया, यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। उसे पुनः ढूँढ़कर मठमें वापिस लाने के लिये आप **** महाराजको कहना।

PWD (सरकारी Public Works Department — लोक निर्माण विभाग) को अपनी भूमि मत दे देना। उस भूमिपर आपका अधिकार PWD के अस्तित्वमें आनेसे भी पहलेका है। न्यायालयसे निषेधाज्ञा जारी करवा लेना। PWD के नोटिसको अस्वीकार कर देना। ******को गोलोकगञ्जमें भेज देना। वह बहुत परिश्रमी तथा सरल स्वभाव वाला है। ध्यान रखना कोई उसे बुरा-भला न कहे।

मैं आगामी परसों चुँचुड़ा रथयात्रामें जा रहा हूँ। *****महाराज १०/१२ दिनसे कहाँ चले गये हैं, कुछ पता नहीं। इति—

नित्यमङ्गलाकाङ्क्षी,

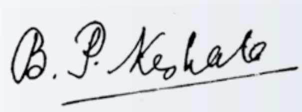

**श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव**

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-४२, संख्या-६ से अनुदित)

# गौड़ीयका तैंतीसवाँ वर्ष

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

### श्रीपत्रिकामें आश्रय और विषय—दोनोंका समावेश

श्रीगौड़ीय पत्रिकाने तैंतीसवें वर्षमें प्रवेश किया। इस वर्ष श्रीपत्रिकाने आश्रय और विषय-विग्रह श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोद-विहारीजीको वक्षपर अर्थात् आवरण-पृष्ठपर धारण करते हुए शुभ आत्मप्रकाश किया है। चिन्मयलीलाका सम्पादन करनेवाले श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल ही श्रीगौराङ्गके रूपमें आविर्भूत हुए हैं। श्रीगौराङ्ग एवं श्रीश्रीराधाकृष्णके सेवा-सौष्ठवके प्रकाशकर्ताके रूपमें श्रीगुरुदेव अधिष्ठित हैं। श्रीकृष्णके बिना श्रीचैतन्यका अस्तित्व नहीं है, पुनः श्रीकृष्णचैतन्यदेव ही कृष्णतत्त्वसे वास्तविक परिचय करानेवाले हैं। कृष्णतत्त्वसे ही समग्र व्यक्त-अव्यक्त जगत् प्रकाशित है।

### श्रीगौर और कृष्ण विषय-विग्रह हैं

श्रीगौराङ्ग और श्रीकृष्णतत्त्व किसी मायिक वस्तुके वशीभूत नहीं हैं, अपितु प्रकृति, काल और कर्म आदि उनके ही वशीभूत हैं। वे दोनों पूर्णज्ञानमय सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम तत्त्व हैं तथा भौतिक दृश्यमान् जगत्की सृष्टिके पूर्वसे ही सबके आदि-पिता हैं। कार्य एवं कारणका विचार जिस स्थानपर समाप्ति प्राप्त करता है, वह चरमतत्त्व [सर्वकारणकारणम्] ही श्रीगौर-कृष्णका वास्तविक प्रकाश है। प्राकृत इतिहास उनको देश-काल-पात्रके अन्तर्गत करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि वे परतत्त्व हैं। वे बङ्किमचन्द्रके[१] द्वारा वर्णित कोई काल्पनिक व्यक्ति नहीं हैं, अपितु 'नाम-नामी अभिन्न हैं'—वे इस विचारकी एकमात्र उद्दिष्ट वस्तु, परम-उपास्य तत्त्व हैं।

### श्रीभगवान्‌के जन्म और लीला अप्राकृत हैं

श्रीभगवान् अजन्मा और नित्य होनेपर भी कलियुगमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभु स्वरूपमें अथवा द्वापरके अन्तमें श्रीकृष्ण स्वरूपमें उनके आविर्भावका जो प्रसङ्ग वर्णित हुआ है, वह इस भौतिक जगत्में उनकी आविर्भाव-लीला मात्र है। उनका जन्म और लीलाएँ नित्यकाल तक अप्राकृत भूमिकामें विद्यमान् हैं। वे स्वेच्छामय हैं, इसलिए कृपापूर्वक जगत्-प्रपञ्चमें प्रकटित होकर वे जीवोंके प्रति अहैतुकी करुणा प्रकाशित करते हैं। वे सर्वशक्तिमान् भगवान् आवश्यकताके अनुसार विश्वके अथवा जीवके अत्यन्त निकटमें और अत्यन्त दूरमें एवं सर्वत्र व्याप्त रूपमें अवस्थित हैं। वे अखिल-रसामृत-मूर्ति हैं, स्वयं कान्त होनेपर भी वे एकान्तिक जीवात्माके

---

१ बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३८-१८९४) बांग्ला भाषाके प्रख्यात उपन्यासकार, कवि, गद्यकार और पत्रकार थे। भारतका राष्ट्रगीत 'वन्दे मातरम्' उनकी ही रचना है।

प्राणपति हैं, वे पितृ-मातृकुलके उपास्य श्रीबालगोपाल हैं; वे दीनबन्धु, जगबन्धु हैं—उनके साथ बन्धुत्व या सख्यभाव स्थापित नहीं करके जीव शत्रुपुरीमें वास करते हुए प्रबल पराक्रमशाली शत्रुओंको अपना मित्र समझकर विपत्तियोंमें फँस जाता है। जीव सेवक रूपमें कृष्णके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको भगवान् मानकर उनकी सेवा करने लगता है और अन्तमें अपने काल्पनिक क्षयशील सेवाधर्मका परित्यागकर स्वयं सेव्य बन जाता है और दुर्भाग्यवशतः जड़ाभिमानरूपी जड़तासे ग्रस्त होकर पशु, तृण, गुल्म, लता तथा अन्तमें पत्थरके रूपमें जन्मरूपी अधोगतिको स्वीकार करता है।

## श्रीगुरु-वैष्णवोंके प्रति शरणागति ही आत्यन्तिक[२] मङ्गलका कारण

उपरोक्त अधःपतनसे उद्धारके लिए ही परदुःखदुःखी परमदयालु श्रीगुरुदेवका आविर्भाव होता है एवं जीवके लिये श्रीगुरुदेवके शरणागत होनेकी आवश्यकता है। श्रीवृषभानुनन्दिनी ही मूल आश्रयविग्रह हैं। उनके आश्रित श्रीवार्षभानवी-दयितदास और उनके अनुगामी एकान्तिकगण ही जगत्-उद्धारकी लीलामें श्रीगुरुदेवके रूपमें प्रकाशमान हैं। उन लोगोंकी अहैतुकी करुणाके बिना जीवके लिए बद्धावस्थासे मोचन प्राप्त करना और तुरीय [इस भौतिक जगत्से परे, पारमार्थिक जगत् की] वस्तुकी सेवामें आत्मनियोग करना सम्भव नहीं है। इसीलिए *'तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्'*[३] वचन विशेष रूपसे प्रचारित हैं। सद्-गुरु ही साधक या सेवकके वास्तविक संरक्षक हैं, वे साधकके सबकुछ हैं। श्रीगुरुदेवकी अप्राकृत स्नेहदृष्टि और सहायताके बिना साधन-भजन पथपर किसी प्रकार अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। इसीलिये *'आचार्यवान् पुरुषो वेद'*[४] वाक्यकी अवतारणा हुई है। जो लोग अज्ञानी, अश्रद्धालु और संशयात्मा हैं, उनके लिए तत्त्वको समझना प्रायः अति दुष्कर है। अतः साधु-शास्त्र-गुरुवर्गके निमित्त मङ्गलाचरण-उक्तिमें यह पाया जाता है—"*गुरु, वैष्णव, भगवान्—तिनेर स्मरण। तिनेर स्मरणे हय विघ्न विनाशन। अनायासे हय निज वाञ्छित पूरण॥*" [अर्थात् शुभ कार्यके आरम्भमें मैं श्रीगुरु, वैष्णव एवं भगवान्—इन तीनोंका स्मरण करता हूँ, क्योंकि इन तीनोंके स्मरणसे विघ्नोंका नाश हो जाता है तथा अनायास ही निज वाञ्छाओंकी पूर्ति होती है।—चैतन्यचरितामृत, आदिलीला (१/२०-२१)]

## बद्धजीवोंकी दुर्गति और उससे निस्तारका उपाय

बद्धजीव अपने बुरे कर्मोंके फलस्वरूप जन्म-मृत्युरूप कर्मफलका भोग करते हैं एवं भौतिक कर्म करनेकी वासनाओंका उदय होनेपर उनकी संसारदशा अधिक परिमाणमें बढ़ जाती है। ज्ञात अथवा अज्ञातरूपमें किसी सौभाग्यसे पूर्व जन्ममें विष्णु-वैष्णव-सेवाके फलस्वरूप सञ्चित सुकृतिके प्रभावसे गुरुकृपा प्राप्त होती है। मायाबद्ध जीव स्वभावतः भोगमें उन्मत्त, अन्याभिलाषी, कर्मी-ज्ञानी-योगियोंकी तो सेवा करता है, परन्तु विष्णु-वैष्णवोंकी सेवामें उसकी रुचि नहीं होती। गृहव्रती[५] व्यक्तियोंको कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी ही कामना होती

२ चिरकालीन एवं सर्वोपरि

३ "हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्॥" (भक्तिसन्दर्भ-२३७) अर्थात् श्रीहरिके रुष्ट हो जानेपर श्रीगुरुदेव रक्षा कर सकते हैं, किन्तु श्रीगुरुदेवके रुष्ट होनेपर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। अतएव सभी प्रकारसे यत्नपूर्वक श्रीगुरुदेवको प्रसन्न करना उचित है।

४ अर्थात् आचार्यसे दीक्षा प्राप्त व्यक्ति ही परब्रह्मको जानते हैं—छान्दोग्य उपनिषद् (६/१४/२)

५ गृहव्रती अर्थात् ऐसे व्यक्ति जिन्होंने अपनी पञ्चभौतिक मर्त्य देहको ही सर्वस्व मान लिया है तथा इस देह एवं देहसे सम्बन्धयुक्त वस्तुओं एवं व्यक्तियोंके पालन पोषणका व्रत लेकर उनके साथ इस संसारमें सुखपूर्वक जीवन यापन करनेको ही अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य निर्धारित किया है।

है, इसलिए वे इन कामनाओंकी पूर्ति हेतु ईन्धन प्रदान करनेवालेको ही उपदेष्टा गुरुके रूपमें स्वीकार करते हुए वासनामय संसारको ही आमन्त्रित करते हैं। सुकृतिवान् जीवके कल्याणके लिये श्रीभगवान् अपने प्रियजनको महान्तगुरुके रूपमें भेज देते हैं, यही कृष्णकृपा है। श्रीगुरुदेव जीवको जो कृष्णसेवा प्रदान करते हैं, वही श्रीगुरुकृपा या भक्तिलता-बीज है। उपरोक्त (विष्णु-वैष्णव) सेवाके फलस्वरूप ही श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होती है तथा यह श्रद्धा ही भक्तिप्राप्तिका सुगम पथ है।

## श्रीगुरु एवं शिष्यका सम्बन्ध एवं गुरुद्रोहिताका फल

दीक्षागुरु एवं शिक्षागुरुसे स्वतन्त्र होकर अर्थात् दाम्भिकता और मत्सरताके वशीभूत होकर उनके आनुगत्यको अस्वीकार करके श्रीकृष्णसेवाकी छलना करनेपर वह सेवा-श्रम निरर्थक, निष्फल हो जाता है। कारण, श्रीगुरुदेव विश्रम्भ-शिष्यको ही परम-गोपनीय साधन-भजनके विषयमें उपदेश देते हैं, जिसमें निष्कपट रूपसे नियुक्त होनेपर भगवत् कृपा सहजतासे प्राप्त होती है। श्रीगुरुदेवको अपना हितकारी बान्धव और परमाराध्यतम श्रीहरिस्वरूप जानकर निष्कपट भावसे उनका अनुगमन करनेपर श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं। भोगोन्मुख, गुरुसेवक होनेका मिथ्या अभिमान मात्र करनेवाला व्यक्ति इसके विरुद्ध-आचरण करते हुए गुरुके समस्त आदेश-निर्देशोंको ही बिना विचार किये दिये गये आदेश मानकर श्रीगुरुके दोष-अनुसन्धानमें प्रवृत्त होकर अपने लिये नरकका पथ प्रशस्त करते हैं। गुरुकी आज्ञाका बिना किसी विचारके पालन करनेसे गुरुकृपा सहजतासे ही प्राप्त होती है। अन्यथा श्रील ईश्वरपुरीपादके आदर्शको त्यागकर रामचन्द्रपुरीके समान स्वतन्त्रताका अपव्यवहार करनेपर गुरुतत्त्वके प्रति अवज्ञा और दोषानुसन्धानकी स्पृहा उत्पन्न होकर व्यक्तिको भजनसे च्युत करा देती है।

## गुरुसेवकका अधिकार और अनधिकार निर्णय

गुरुसेवक या गुरुदास विनीत, प्रियदर्शन, सत्यवादी, शुद्धाचारी, बुद्धिमान्, काम-क्रोध-दम्भ आदिसे रहित, श्रीगुरु एवं भगवान्के प्रति श्रद्धा-भक्तियुक्त एवं सेवापरायण, निरोग, जितेन्द्रिय और दयालु होते हैं। दम्भ-अहङ्काररहित, निर्मत्सर, आलस्यरहित, जड़वस्तुओंमें ममतारहित, अचञ्चल, गुणी व्यक्तिके दोष न देखनेवाले, प्रजल्प न करनेवाले और तत्त्वजिज्ञासु व्यक्ति ही गुरुदास पदवाच्य हैं। आलसी, अहङ्कारी, कृपण, क्रोधी, व्याधिग्रस्त, विषयासक्त, लोभी, परछिद्रान्वेषी, मत्सर, वञ्चक, कर्कशभाषी, भक्तविद्वेषी, पण्डिताभिमानी, दूसरेके दोषोंकी सूचना देनेवाले, दूसरेको पीड़ा देनेवाले तथा गुरुके शासनको स्वीकार करनेकी इच्छा नहीं रखनेवाले व्यक्ति गुरुकृपा प्राप्त करनेमें असमर्थ और वञ्चित होते हैं। इसके अतिरिक्त छः प्रकारके हेतुवादियों[६] के मतावलम्बी व्यक्ति भी गुरुदास होनेके लिए अयोग्य हैं। गुरुसेवककी साक्षात् सेवाके सम्बन्धमें कर्तव्य और निषिद्ध विषय क्या हैं तथा गुरु-शास्त्रवाक्योंके अनुसार पालनीय अनुष्ठान और त्याग करने योग्य निषिद्ध आचरण कौनसे हैं, इसका भी विशेष रूपसे ध्यान रखना आवश्यक है। श्रीगुरु और उनके सेवक नित्य हैं, क्योंकि गुरु-शिष्य सम्बन्ध नित्य है। गुरुमें मर्त्यबुद्धि नहीं करनी चाहिए। भौतिक जगत्की क्रियाओंमें अभिनिवेश दूर होनेपर कृष्णदासत्वरूपी निजस्वरूपकी अनुभूति होती है, तब बृहद्-चैतन्य

---

६ हेतुवाद अर्थात् प्रतिकूल तर्कपरायण। हयशीर्ष पञ्चरात्र (हरिभक्तिविलास १/४८) में लिखा है—'जैमिनिः सुगतश्चैव नास्तिको नग्न एव च। कपिलश्चाक्षपादश्च षड़ेते हेतुवादिनः॥' अर्थात् जैमिनि, सुगत, नास्तिक, नग्न, कपिल और गौतम—ये छः व्यक्ति हेतुवादी कहलाते हैं, इनके मतानुगामी भी हेतुवादी हैं, अतएव साम्प्रदायिक आचार्यके लिये हेतुवादी मतावलम्बी व्यक्तियोंको मन्त्रशिक्षा देना निषिद्ध है।

और अणु-चैतन्यका वैशिष्ट्य उपलब्धिका विषय होता है।

## गुरु-गौड़ीयका विशेष सद्गुण—महाप्रसाद वितरणसेवा

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित 'गुर्वष्टकम्के *'चतुर्विध-श्रीभगवत्प्रसाद-स्वाद्वन्न-तृप्तान् हरिभक्तसङ्घान्'* चतुर्थ श्लोकके पद्यानुवादमें देख सकते हैं— *'चर्व्य-चोष्य-लेह्य-पेय-रसमय, प्रसादान्न कृष्णेर अति स्वादु हय, भक्त-आस्वादने निजे तृप्त रय, वन्दि सेइ गुरुर चरणकमल।'* उक्त श्लोककी विशेष व्याख्यामें यह वर्णन किया गया है कि अनर्थ-निर्मुक्त भगवद्भक्तोंके समुदायको उनके स्वरूपसिद्ध सेवाभावके अनुसार दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन चार प्रकारके भगवद्-रसोंका आस्वादन कराके जो श्रीगुरुदेव परम आनन्द प्राप्त करते हैं, उन गुरुदेवके श्रीचरणारविन्द मेरे वन्दनीय हैं। इसलिए हम भी आज श्रीगुरुदेवकी ऐसी कृपाको सिरपर धारण करते हुए उनके ही आदेश-निर्देशके अनुसार विषय-आश्रयका समन्वय करनेवाली श्रीगौड़ीय-पत्रिकाके महोत्सवके विचित्र महाप्रसादका परिवेशन करनेकी आशा हृदयमें पोषण करते हैं। इस गुरुत्वपूर्ण दायित्वका सम्पादन करनेमें हम कितना समर्थ हो पाएँगे, यह मैं नहीं जानता हूँ। तब भी हृदयमें प्रबल आशा और सुदृढ़ विश्वास है कि सद्गुरुकी कृपासे पङ्गु व्यक्ति भी पर्वत लांघनेकी एवं मूक व्यक्ति भी कृष्णकीर्तनकी योग्यता प्राप्त कर सकता है। महाप्रसादका वितरण करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। स्वल्पपुण्यवान् व्यक्तिकी श्रीमहाप्रसाद, श्रीगोविन्द, श्रीनाम और वैष्णवमें अप्राकृत बुद्धि नहीं होती, इसलिये वैष्णवस्मृति श्रीहरिभक्तिविलासमें कर्मजड़-स्मार्त्त लोगोंको महाप्रसादके स्थानपर प्राकृत धन-सम्पत्ति आदि प्रदानकर उनकी वञ्चना करनेका आदेश दिया गया है। श्रीगौड़ीय पत्रिका वैष्णव है, अतः उनके भण्डारमें अन्य तीन वस्तुएँ—महाप्रसाद, गोविन्द एवं श्रीनाम विद्यमान् हैं। गुरु-वैष्णवकी कृपासे हम केवल परिवेशनकर्ता हैं एवं यही हमारी सेवा है।

## भोगरन्धनकारिणी श्रीमती वृषभानुनन्दिनी तथा उनका आनुगत्य

महाप्रसादमें देश, काल, पात्रका विचार नहीं रहने पर भी अश्रद्धालु व्यक्तिको इसे प्रदान करनेके लिए निषेध किया गया है। श्रीगीतामें *'इदन्ते नातपस्काय'*[७] श्लोक इसका ज्वलन्त प्रमाण है। इस महाप्रसादके वितरण या परिवेशन कार्यमें हमारा कोई कृतित्व नहीं है, जो कुछ कृतित्व है, वह भोगरन्धनकर्ता, भोगप्रदानकर्ता एवं स्वयं भोक्ता और उनके कृपा-अवशेष श्रीमहाप्रसादका है। श्रीगौराङ्ग-विनोदविहारीकी भोगरन्धनकारिणी हैं स्वयं श्रीलक्ष्मी-विष्णुप्रिया एवं श्रीमती राधारानी। श्रीकृष्ण-मनोऽभीष्ट पूर्णकारिणी श्रीराधिकाके पक्व अन्न व्यञ्जन आदि सामग्रियाँ ही श्रीकृष्णके द्वारा भोग्य हैं एवं उक्त श्रीकृष्णप्रसाद ही श्रीराधिकाके लिए परमप्रिय है, उस श्रीकृष्णप्रसादका सेवन करनेसे ही श्रीराधिकाको विशेष प्रसन्नता प्राप्त होती है। श्रीराधिकाकी सहचरी गोपियाँ अर्थात् ललिता आदि सखीगण ही श्रीराधाके अवशेषकी अधिकारिणी हैं। रूपानुग जनोंको भी उस परम-विशिष्ट महाप्रसादका सेवन करनेका अधिकार प्राप्त है। रूपानुग जनोंमें श्रेष्ठ श्रीगुरुदेव भी जीवोंके अधिकारके अनुसार उन्हें उस महाप्रसादका आस्वादन कराके परितृप्त होते हैं। कृष्णका उच्छिष्ट महाप्रसाद कृष्णभक्त-भुक्त-अवशेष होनेपर महा-महाप्रसादके नामसे जाना जाता है एवं

---

७ अर्थात् इस गीताशास्त्रको तुम कभी भी असंयमित, अभक्त, सेवाविहीन और मुझसे द्वेष करनेवालेको नहीं बताना। श्रीगीता (१८/६७)

वह असीम क्षमता धारण करता है। वेद रूपी कल्पवृक्षका परिपक्व अमृतफल श्रीमद्भागवतम् श्रीशुकदेवके मुखसे निःसृत होनेके कारण अर्थात् श्रीरूपानुग गुरुवर्गके मुख-संलग्न होनेके कारण मधुरसे भी सुमधुर स्वादयुक्त हो गया है। हम उस सनातन वस्तु महा-महाप्रसादकी परिवेशन-सेवाको ग्रहणकर धन्य होनेकी आकांक्षाका पोषण करते हैं। अतः भोगरन्धनकारिणी श्रीमती राधाठाकुरानी एवं उनकी अनुगता वार्षभानवीदयितदास श्रीराधिकाकी 'नयनमणि' मञ्जरी एवं कृतिरत्न-गुणान्विता 'विनोदमञ्जरी' के आनुगत्यके बिना हमें कदापि भोग-रन्धन-सेवामें सहायताकारिणी और महाप्रसाद-वितरणकारिणीका अधिकार प्राप्त नहीं होगा, यह ध्रुवसत्य है। आनुगत्यके बिना भोगरन्धन आदिकी जो अपचेष्टा है, वह कर्म-जड़-स्मार्त्तके दग्ध-पिण्ड आदिकी सृष्टि करेगी। उससे वास्तव सेवाफल प्राप्त नहीं होगा अपितु सेवापराधको ही आमन्त्रण करना होगा।

## श्रीपत्रिकाकी सेवाप्राप्तिकी आशा और वन्दना करते हुए कृतज्ञता प्रकाश

श्रीपत्रिकाके पठन-पाठनकारी ग्राहकवर्ग, अनुमोदनकारी, किसी भी प्रकार सेवानुकूल्य विधानकारी और उपदेष्टाओंको यथायोग्य अभिवादन ज्ञापित करते हुए उनके निकट कृतज्ञता स्वीकार कर रहा हूँ। अन्तमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजी, श्रीलक्ष्मी-वराह-नृसिंहदेव, श्रीराधा-गिरिधारी और श्रीगिरिराजजीके कृपाशीर्वादकी प्रार्थना करते हुए इस वर्षकी श्रीपत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्यको समाप्त कर रहा हूँ।

(श्रीगौड़ीय-पत्रिका, वर्ष-३३, संख्या-१ से अनुदित)

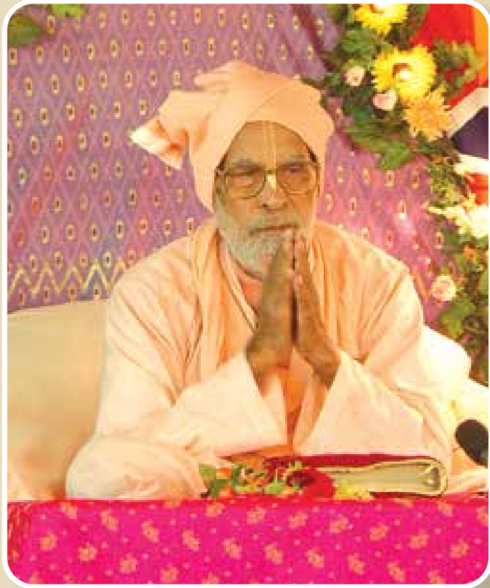

**प्रश्नः श्री बी.एन. शुक्ल—श्रीरूपानुग-धारा क्या है?**

**उत्तरः श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज (श्रील गुरुदेव)**—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं। श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधाके भाव एवं अङ्गकान्तिको ग्रहणकर आश्रयजातीय उन्नत-उज्ज्वल प्रेमरसके सारका स्वयं आस्वादनकर उसकी ['श्री' अर्थात् शोभा—मञ्जरी भावका] प्रथम बार जगत्‌को भी आस्वादन प्रदान करानेके लिये आविर्भूत हुए हैं। उन्होंने इस श्रीगौरावतारमें स्वयं उन्नत-उज्ज्वल प्रेमरसरूप श्रीराधाभावका आस्वादनकर, निजप्रिय पार्षद श्रील रूप गोस्वामीको उक्त अप्राकृत [उन्नत-उज्ज्वल] प्रेमरसके सार [की शोभा—मञ्जरी भाव] का आस्वादन करनेके लिये क्रम-पद्धतिकी शिक्षा दी तथा उनमें शक्तिका सञ्चार किया। श्रील रूप गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा शक्ति प्राप्तकर तथा उनकी शिक्षाओंसे शिक्षित होकर जगत्-मङ्गलके लिये—भक्तिरसामृतसिन्धुमें अवगाहन कर उज्ज्वलनीलमणिको प्राप्त करनेके

# श्रीरूपानुग-धारा, 'श्रील' शब्द तथा श्रीगौड़ीय वेदान्तकी व्याख्या

**—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज**

लिये श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि, श्रीदानकेलिकौमुदी, हंसदूत, उद्धव-सन्देश, विदग्धमाधव, ललित-माधव, पद्यावली और स्तवमाला आदि स्वरचित विभिन्न ग्रन्थोंके माध्यमसे एक परम चमत्कारपूर्ण, नित्य नवीन एवं सर्वाङ्गपूर्ण भक्तिरसामृतसिन्धुकी धारा इस जगत्में प्रवाहित की है। वही धारा श्रील रघुनाथदास गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद एवं श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीके माध्यमसे आज भी निरन्तर बिना किसी व्यवधानके प्रवाहित हो रही है। वर्तमान कालमें इस धाराको 'श्रीभक्तिविनोद धारा' भी कहते हैं। यही श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल उपासनाकी विशुद्ध धारा है।

रसिकचूड़ामणि भगवत् पार्षद श्रील रूप गोस्वामीकी शिक्षाओं, उनके आचार-विचारों [भावों] तथा भजन-पद्धतिको सम्पूर्ण रूपसे अङ्गीकार करना ही रूपानुगधारा है। जो श्रद्धालु व्यक्ति श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित कृष्ण-प्रेमका आस्वादन करना चाहते हैं, उनके लिये श्रील रूप गोस्वामीका आनुगत्य करना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीरूपानुगत्यके बिना उन्नत-उज्ज्वल-रस-निर्यास [सार]का आस्वादन कदापि सम्भव नहीं है एवं इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है।

**श्री बी.एन. शुक्ल**—'श्रील'—शब्द, जो महापुरुषोंके नामके पूर्व लगाया जाता है, उसका क्या तात्पर्य है?

**श्रील गुरुदेव**—'श्रील' शब्दमें दो अक्षर हैं—श्री+ल। 'श्री' अर्थात् सम्पत्ति, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, सर्वलक्ष्मी स्वरूपिणी राधिका एवं विष्णु भक्ति—ये विविध अर्थ हैं। 'ल' (ला धातु ड=ल)—ग्रहण करना, लाना या प्रदान करना। अतः 'श्रील' अर्थात् वे जिनको प्रेम-भक्तिरूप सम्पत्ति, ऐश्वर्य या सर्वलक्ष्मी स्वरूपिणी श्रीमती राधिकाका

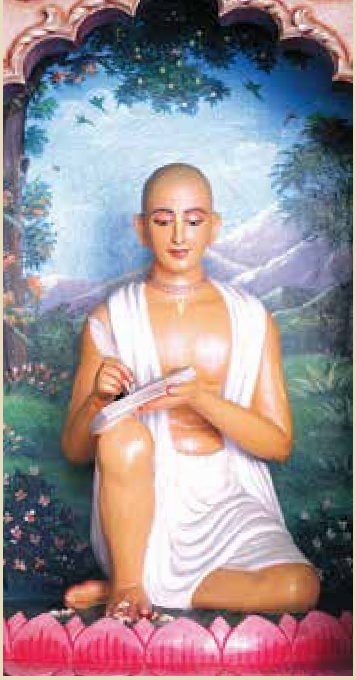

**रसिकचूड़ामणि भगवत् पार्षद श्रील रूप गोस्वामीकी शिक्षाओं, उनके आचार-विचारों [भावों] तथा भजन-पद्धतिको सम्पूर्ण रूपसे अङ्गीकार करना ही रूपानुगधारा है। श्रीरूपानुगत्यके बिना उन्नत-उज्ज्वल-रस-निर्यास [सार] का आस्वादन कदापि सम्भव नहीं है।**

दास्य प्राप्त है, अथवा जो उस दास्यको दूसरोंको प्रदान करते हैं, उन भगवत् पार्षद जगद्गुरु आचार्योंके नामके पूर्व 'श्रील' शब्दका प्रयोग किया जाता है।

'ला' धातुका प्रयोग अस्ति (विद्यमान) संयोग या अधिकारीके अर्थमें भी होता है। अतः 'श्री' अर्थात् ऐश्वर्य, विष्णुभक्ति या प्रेम भक्ति जिनमें विद्यमान है अथवा जो इनसे युक्त हैं, अथवा जो इनके अधिकारी हैं, उनके नामोंके पूर्व 'श्रील' का प्रयोग होता है।

'श्रील' का प्रयोग (ला धातु अस्ति अर्थमें) जीवित व्यक्तियोंके नामोंके पूर्व उपयुक्त होता है। ऐश्वर्यसे युक्त या प्रेम-रूप सम्पत्ति—भक्तिसे युक्त महापुरुषगण कदापि मरणशील नहीं होते हैं, वे सर्वदा ही जीवित रहते हैं। अथवा जो महापुरुषगण पञ्चभौतिक शरीर त्याग करनेके अनन्तर भी निज विद्या, ग्रन्थ[रचना] या शिक्षाके माध्यमसे जीवित हैं, उनके नामोंके पूर्व 'श्रील' का प्रयोग किया जाता है।

**श्री बी.एन. शुक्ल**—श्रीगौड़ीय-वेदान्त और भक्तिवेदान्तका परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय कैसे सम्भव है? भक्ति भगवान्को ही सब कुछ समझती है, जब कि वेदान्त सबको ब्रह्म मानता है।

**श्रील गुरुदेव**—वेद + अन्त = वेदान्त अर्थात् वेदका अन्त। 'अन्त' शब्दका अर्थ सार, शिरोमणि या शेष होता है। अतः वेदका सारभाग या शिरोभाग ही वेदान्त है। वेदका सार या सर्वोत्तम तत्त्व भक्ति है, अथवा भक्ति ही वेदान्त है। अतः वेदान्त कहनेसे एकमात्र भक्तिका ही बोध होता है।

साधारणतः लोग भ्रमवशतः वेदान्त कहनेसे ज्ञानको लक्ष्य करते हैं। उनका ज्ञानसे तात्पर्य निर्विशेष ज्ञानसे होता है। परन्तु श्रीवेदव्यास द्वारा रचित सम्पूर्ण 'वेदान्त सूत्र' ग्रन्थमें कहीं भी 'ज्ञान' शब्दका उल्लेख तक नहीं है। वेदान्त कहनेसे कर्म और ज्ञानका कदापि बोध नहीं होता। अभिधेय-तत्त्वमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। कर्म और ज्ञानका प्राधान्य नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित भक्तितत्त्वके विचारसे भगवान्का नाम ग्रहण—नाम भजन ही सर्वश्रेष्ठ एवं नाम ही स्वयं भगवान् कृष्ण हैं—"*अभिन्नत्वात् नामनामिनः*।" यह नाम तत्त्व ही श्रेष्ठतम उपास्य हैं और श्रीनाम ग्रहण ही श्रेष्ठतम उपासना है। यह ब्रह्मसूत्र—वेदान्तसूत्रमें स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित हुआ है।

दार्शनिक ग्रन्थोंमें उपक्रम और उपसंहार एक-तात्पर्यपर होता है, अर्थात् प्रारम्भ और अन्त एक-तात्पर्य-विशिष्ट(युक्त) नहीं होनेपर दार्शनिक विचारकी प्रतिष्ठा सम्भव नहीं होती है। ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्रके प्रथम सूत्रमें '*अथातो ब्रह्म जिज्ञासा*'—'शब्द-ब्रह्म'की जिज्ञासा है और अन्तिम सूत्र '*अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्*' से शब्द-ब्रह्म या नाम-ब्रह्मकी पुनः-पुनः आवृत्ति या कीर्त्तनसे ही अनावृत्ति अर्थात् संसार दुःखकी निवृत्ति और भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवा अर्थात् नामी ब्रह्मकी सेवा प्राप्त होती है। वेदान्तके मध्यमें भी '*अपिसंराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्*' आदि सूत्रोंमें आराधना अर्थात् भक्तिका ही प्रतिपादन किया गया है। श्रीवेदान्तसूत्रके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतमें भी इसीकी पुनरावृत्ति की गयी है—'*अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः*'। यही भक्ति-वेदान्त स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके एकान्त अनुगत गौड़ीय वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रचारित होनेपर गौड़ीय वेदान्तके रूपसे प्रसिद्ध हुआ है।

गौड़ीय कहनेसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत रसिक वैष्णवोंका बोध होता है। गौड़ीय कहनेके कुछेक भौगोलिक, व्यक्तिगत और दार्शनिक कारण हैं—

(१) भौगोलिक कारण—प्राचीनकालमें भारतवर्ष प्रधानतः गौड़ और द्राविड़—दो भागोंमें विभक्त था। उत्तर भारत पञ्चगौड़ (पाँच गौड़) और दक्षिण भारत पञ्च द्रविड़में विभक्त था। मध्ययुगमें अर्थात् भारतमें मुसलमानी राज्यकालमें केवल बङ्गाल ही प्रधान रूपमें गौड़ कहलाने लगा। उस समय राजा बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन गौड़ाधिपति कहलाते थे। इनकी राजधानी नवद्वीप (नदीया) थी। कालान्तरमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने इसी गौड़भूमिमें आविर्भूत होकर वेद-वेदान्त-पुराण द्वारा स्थापित उपरोक्त शुद्धभक्तिका प्रचार किया। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभुका अनुगत सम्प्रदाय गौड़ीय सम्प्रदाय और अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्व—गौड़ीय वेदान्त दर्शन कहलाया।

(२) व्यक्तिगत कारण—ब्रह्म-सम्प्रदायके अनुगत श्रीव्यास-शिष्य श्रीमध्वाचार्यका एक नाम गौड़पूर्णानन्द है। अतः गौड़के अनुगत होनेके कारण गौड़ीय सम्प्रदाय कहनेसे मध्व सम्प्रदाय और मध्वानुगत श्रीचैतन्य सम्प्रदाय, दोनोंका बोध होता है। दोनों ही गौड़ीय हैं।

(३) दार्शनिक कारण—श्रीकृष्ण ही रस-स्वरूप एवं रसिकचूड़ामणि हैं। वे रसके विषय हैं। वे ही आश्रय-जातीय रसका आस्वादन करनेके लिये आश्रय-जातीय श्रीराधा-भाव-कान्ति ग्रहणकर श्रीगौरसुन्दरके रूपमें प्रकटित हुए हैं। इन्हीं गौरके एकान्त अनुगत रसिक सम्प्रदायका नाम गौड़ीय सम्प्रदाय है। अचिन्त्य-भेदाभेद सिद्धान्त ही इनका दार्शनिक सिद्धान्त है। इसीको गौड़ीय वेदान्त या गौड़ीय दर्शन कहते हैं। यह गौड़ीय-वेदान्त ही भक्ति-वेदान्त है।

लोग भ्रान्त धारणाके वशीभूत होकर ही श्रीशङ्कराचार्य द्वारा प्रचारित निर्विशेष ज्ञानको वेदान्त-मत मानते हैं। उनकी इस भ्रान्त धारणाको दूर करनेके लिये ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद ॐ विष्णुपाद अष्टोतरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की है तथा अपने अनुगत त्रिदण्डी-संन्यासियोंके नामके पूर्व 'भक्तिवेदान्त' को संयुक्त किया है। इसके द्वारा उन्होंने इस सत्यका उद्घाटन किया है कि भक्ति ही वेदान्त है और श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय भक्तजन ही यथार्थ 'वेदान्ती' हैं।

[श्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष—१२, संख्या—४-५
(अक्तूबर, १९६६) से उद्धृत]

# श्रीगौराङ्ग–सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष–२१, संख्या–५–९ से आगे)

## नीलाचलमें श्रीवल्लभभट्टका आगमन तथा श्रीमन्महाप्रभुका उनके समक्ष अपने भक्तोंकी महिमाको प्रकाशित करना

प्रतिवर्षकी भाँति अगले वर्ष भी श्रीगौड़देशसे भक्तवृन्द नीलाचल आये। श्रीमन्महाप्रभु भी प्रतिवर्षकी भाँति आनन्दपूर्वक उनसे मिले। इस प्रकार महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ लीला–विलास करने लगे। उसी समय श्रीवल्लभभट्ट श्रीमन्महाप्रभुसे मिलनेके लिए आये और उन्होंने आकर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंकी वन्दना की। श्रीमन्महाप्रभुने उन्हें 'भक्त–भागवत' मानकर उनका आलिङ्गन किया तथा आदरपूर्वक उन्हें अपने पास बैठाया। श्रीवल्लभभट्ट दैन्यपूर्वक कहने लगे—"बहुत दिनोंसे मेरी आपके दर्शनोंकी इच्छा थी, आज श्रीजगन्नाथने मेरी इस इच्छाको पूर्ण कर दिया, जो मुझे आपका दर्शन प्राप्त हो रहा है। जिसे आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है, वह महाभाग्यवान् है। आपको देखकर ऐसा लगता है, कि आप साक्षात् भगवान् हैं। जो आपका स्मरण करता है, वह पवित्र हो जाता है, तब फिर दर्शन पाकर वह पवित्र होगा, इसमें आश्चर्यकी कौन–सी बात है, यथा—

**येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।**
**किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥**

श्रीमद्भागवतम् (१/१९/३३)

अर्थात् जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्योंके घर भी पवित्र हो जाते हैं, तो उनके दर्शन, स्पर्श, चरण–प्रक्षालन तथा उनको आसन आदि प्रदान करनेसे कितना लाभ होगा, इसके विषयमें क्या कहा जा सकता है?

"कलिकालका युगधर्म कृष्णनाम–सङ्कीर्तन है। परन्तु कृष्ण–शक्तिके बिना उसका प्रचार सम्भव नहीं है। आपने कृष्णनाम–सङ्कीर्तनका जैसा प्रचार किया है, उससे यह प्रमाणित होता है कि आप श्रीकृष्णकी शक्तिको धारण करनेवाले हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। आपने जगत्में कृष्णनामको प्रकाशित किया है। जो भी आपका दर्शन करता है, वह कृष्णप्रेममें डूब जाता है। श्रीकृष्णकी शक्तिके बिना प्रेमको प्रकाशित नहीं किया जा सकता। एकमात्र श्रीकृष्ण ही प्रेम–प्रदाता हैं।

**सन्त्ववतारा बहवः पङ्कजनाभस्य सर्वतोभद्राः।**
**कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति॥**

श्रीलघुभागवतामृत (१/५/३७) में श्रीबिल्वमङ्गल–वचन

अर्थात् श्रीकृष्णके अंश श्रीपद्मनाभके सर्वमङ्गलमय विभिन्न प्रकारके अवतार रहनेपर भी एकमात्र श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कौन है, जो लताओंको भी प्रेम प्रदान कर सकें? अर्थात् अन्य कोई नहीं कर सकता।"

यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु कहने लगे—"अहो श्रीवल्लभभट्ट! सुनिये, मैं तो मायावादी संन्यासी

हूँ। अतः मैं कृष्णभक्ति नहीं जानता।" तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु भगवान्‌के भक्तोंकी महिमाका गान करते हुए कहने लगे—

(१) श्रीअद्वैताचार्य साक्षात् ईश्वर हैं। उनके सङ्गसे मेरा मन निर्मल हो गया है। समस्त शास्त्रोंके ज्ञानमें तथा भक्तिकी पराकाष्ठामें उनके समान अन्य कोई भी नहीं है, इसलिये उनका नाम अद्वैत-आचार्य है। जिनकी कृपासे म्लेच्छको भी कृष्णभक्ति प्राप्त हो जाती है, उनकी वैष्णवता की शक्तिका कौन वर्णन कर सकता है?

(२) अवधूत श्रीनित्यानन्द साक्षात् ईश्वर हैं। वे सर्वदा भावके उन्मादमें मत्त रहते हैं तथा श्रीकृष्णप्रेमके सागर हैं।

(३) श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य षड्दर्शनके सम्पूर्ण ज्ञाता हैं, वे षड्दर्शनमें जगद्गुरु हैं तथा भक्तोंमें उत्तम हैं। उन्होंने ही मुझे भक्तियोगकी चरम सीमाका दर्शन कराया है। उन्हींकी कृपासे मैं श्रीकृष्ण-भक्तियोगके सारको जान पाया हूँ।

(४) श्रीरामानन्द राय कृष्णरसकी निधि हैं, उनसे ही मुझे ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं और श्रीकृष्णकी प्रेमभक्ति ही सभी पुरुषार्थोंकी शिरोमणि है तथा रागमार्गमें की जानेवाली प्रेमभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है, अर्थात् विधिमार्गमें श्रीकृष्णकी पूजाकी अपेक्षा रागानुगामार्गमें की गयी भक्ति अथवा सेवा श्रेष्ठ है। मैंने इन्हींसे जाना कि दास, सखा, गुरुजन और कान्ताएँ क्रमशः दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रसके आश्रय हैं। मधुर रस भी दो प्रकारका होता है—ऐश्वर्यज्ञानयुक्त मधुर रस तथा शुद्ध मधुर रस। ऐश्वर्यज्ञानयुक्त भावसे व्रजेन्द्रनन्दनकी परम महिमाको नहीं जाना जा सकता। जैसा कि भागवतमें ही वर्णन है—

**नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।**
**ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥**

श्रीमद्भागवतम् (१०/९/२१)

अर्थात् यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिमान् देहधारियोंको जिस प्रकारसे सुलभ हैं, आत्मभूत ज्ञानियोंके लिए वैसे सुलभ नहीं हैं। यहाँ 'आत्मभूत' शब्दका अर्थ 'पार्षद' है। ऐश्वर्यज्ञानमयी लक्ष्मीदेवी भगवान्‌की पार्षद होनेपर भी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त नहीं कर सकी। शुद्ध अथवा 'केवल-भाव' (ऐश्वर्यज्ञानहीन भाव) से सखा श्रीकृष्णके कन्धेपर चढ़ते हैं तथा व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजी कृष्णको बाँध देती हैं। ऐश्वर्यज्ञानहीन भक्तका भाव होता है कि कृष्ण मेरे सखा हैं, कृष्ण मेरे पुत्र हैं। इसलिये श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा श्रीवेदव्यास ऐसे भक्तोंकी प्रशंसा करते हैं। ऐश्वर्य देखनेपर भी शुद्ध भाव-युक्त भक्त उस ऐश्वर्यको नहीं मानते, इसलिये केवल-भाव ही श्रेष्ठ है। ये सब सिद्धान्त मुझे श्रीरामानन्द रायने ही सिखाये हैं। इन सबको सुनते ही मेरे हृदयमें परम आनन्दकी अनुभूति होती है। श्रीरामानन्द रायकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनकी कृपासे ही मैंने व्रजके शुद्धभावको जाना है।

(५) श्रीस्वरूप दामोदर प्रेमरसके साक्षात् मूर्तिमान् रूप हैं। उन्हींके सङ्ग एवं कृपासे मुझे व्रजके मधुर रसका—व्रजदेवियोंके शुद्ध प्रेमका ज्ञान हुआ। व्रजदेवियोंके शुद्धप्रेममें कामकी अर्थात् स्व-सुख-कामनाकी गन्धमात्र भी नहीं है। श्रीकृष्णको सुखी करना ही शुद्धप्रेमका एकमात्र लक्षण है। समस्त रसोंमें मधुररस ही श्रेष्ठ है। गोपियोंका मधुररसमें कृष्ण भजन अन्य सभी प्रकारके भक्तिरसोंसे श्रेष्ठ है। स्वयं श्रीकृष्णने ही अपने मुखसे गोपियोंसे कहा है—

**न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां**
**स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।**
**या माऽभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः**
**संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥**

श्रीमद्भागवतम् (१०/३२/२२)

अर्थात् कृष्ण कह रहे हैं—हे गोपियों! मेरे साथ तुम्हारा मिलन निर्मल है। तुम लोगोंने मेरी प्राप्तिके लिये अति कठिन संसार-शृङ्खलाओंको सम्पूर्णरूपसे तोड़कर मेरा भजन किया है। मैं अति दीर्घायु प्राप्त करके भी तुम लोगोंके इस ऋणका शोधन करनेमें सक्षम नहीं हूँ। अतः तुम लोग अपने साधु कार्योंके द्वारा ही सन्तुष्ट होओ।

ऐश्वर्यज्ञानसे 'केवल'-भाव श्रेष्ठ है। पृथ्वीपर उद्धवके समान कोई भक्त नहीं है, किन्तु वे भी उन व्रजगोपियोंकी चरण-धूलीकी प्रार्थना करते हैं। ये सभी शिक्षाएँ मुझे श्रीस्वरूप दामोदरके सङ्गसे ही प्राप्त हुई हैं।

(६) श्रीहरिदास ठाकुर महाभागवत-प्रधान हैं। वे प्रतिदिन तीन लाख नाम करते हैं। अभी आपने जो कहा कि मैंने नामका प्रचार किया है, वास्तवमें नामकी महिमा तो मैंने श्रीहरिदास ठाकुरसे ही सुनी है। वल्लभभट्ट जी! इनके अतिरिक्त और भी अनेकों भक्त हैं, जिन्होंने जगत्‌में नामका प्रचार किया है। इन सबके सङ्गसे ही मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हुई है।"

## भक्तोंकी महिमा सुनकर श्रीवल्लभभट्टके मनमें उन भक्तोंके दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा एवं उनकी सेवा और सम्मान

श्रीमन्महाप्रभुके मुखसे सब भक्तोंकी महिमा सुनकर श्रीवल्लभभट्टके मनमें उन सबसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुसे पूछा—"प्रभो! यह सब वैष्णव कहाँ रहते हैं? मैं किस प्रकारसे इन सबका दर्शन प्राप्त कर सकता हूँ?" श्रीमन्महाप्रभुने कहा—"कुछ भक्त गौड़देशमें रहते हैं तथा कुछ अन्य स्थानोंमें रहते हैं। किन्तु अभी ये सभी भक्त रथयात्राके दर्शनके लिए श्रीजगन्नाथपुरीमें आये हुए हैं तथा यहाँपर ही भिन्न-भिन्न स्थानोंपर वास कर रहे हैं। अतः आपको उन सभीके दर्शन यहाँपर हो जायेंगे।" तब श्रीवल्लभभट्टने विनीत वचनोंसे तथा बहुत आग्रहपूर्व श्रीमन्महाप्रभुको उन सब भक्तों सहित प्रसादके लिए निमन्त्रित किया। अगले दिन जब सब भक्त श्रीमन्महाप्रभुके साथ श्रीवल्लभभट्टके स्थानपर पहुँचे, तब श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवल्लभभट्टको उन सबसे मिलवाया। श्रीवल्लभभट्ट उन वैष्णवोंका तेज देखकर विस्मित रह गये। उन सब भक्तोंके सामने श्रीवल्लभभट्ट जुगनूकी भाँति प्रतीत होने लगे। तब श्रीवल्लभभट्टने श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे बहुत-सा प्रसाद मँगवाया तथा महाप्रभुको उनके भक्तों सहित भोजन करवाया। एक ओर श्रीपरमानन्द पुरीके साथमें संन्यासी लोग प्रसाद-सेवाके लिए बैठे। श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके बीचमें बैठ गये। महाप्रभुके दोनों ओर श्रीअद्वैताचार्य तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु बैठ गये, अन्यान्य असंख्य भक्त आङ्गनमें बैठ गये। श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंको देखकर श्रीवल्लभभट्ट चमत्कृत हो उठे। उन्होंने प्रत्यक्षरूपसे सभी भक्तोंके चरणोंमें नमस्कार किया। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीकाशीश्वर पण्डित, श्रीशङ्कर पण्डित, श्रीराघव पण्डित तथा श्रीदामोदर पण्डित परिवेषण कर रहे थे। श्रीवल्लभभट्टने बहुत अधिक मात्रामें महाप्रसाद मँगवाया था। सभी वैष्णव प्रसाद ग्रहण करते समय 'हरि', 'हरि' बोल रहे थे। उस ध्वनिसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भर गया। तत्पश्चात् श्रीवल्लभभट्टने माला, चन्दन आदिसे सबका सम्मान किया। उन समस्त भक्तोंकी सेवाकर श्रीवल्लभभट्ट बहुत आनन्दित हुए।

## श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीवल्लभभट्ट कृत कृष्णनाम तथा भागवतकी व्याख्याओंके प्रति उपेक्षा करना

रथयात्राके दिन श्रीमन्महाप्रभुने प्रतिवर्षकी भाँति सात सङ्कीर्तन दल बनाये। प्रत्येक दलमें एक-एक भक्त नृत्य कर रहा था। जब श्रीमन्महाप्रभुने नृत्य आरम्भ किया तो श्रीवल्लभभट्टके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। उन्होंने देखा कि महाप्रभु एक साथ सातों दलोंमें नृत्य कर रहे थे। रथयात्राकी समाप्तिके पश्चात् श्रीवल्लभभट्ट श्रीमन्महाप्रभुके पास गये तथा उनके श्रीचरणोंमें निवेदन

किया—"प्रभो! मैंने श्रीमद्भागवतकी टीका लिखी है, यदि आप कृपापूर्वक उसे श्रवण करें, तो मेरा परिश्रम सफल हो जायेगा।" श्रीमन्महाप्रभुने उनकी उपेक्षा करते हुए उत्तर दिया—"मैं भागवतका अर्थ समझ ही नहीं पाता हूँ। भागवतकी टीका सुननेका मेरा अधिकार नहीं है। मैं तो केवल बैठकर हरिनाम करता हूँ। दिन-रात नाम करनेपर भी मेरी नाम संख्या ही पूर्ण नहीं हो पाती है।" यह सुनकर श्रीवल्लभभट्ट कहने लगे—"प्रभो! मैंने कृष्णनामके अर्थकी भी विस्तारपूर्वक व्याख्या की है, आप उसे ही सुन लीजिए।" श्रीमन्महाप्रभु बोले—"मैं कृष्णनामके बहुतसे अर्थ नहीं जानता। मैं तो कृष्णनामके 'श्यामसुन्दर तथा यशोदानन्दन'—ये दो अर्थ ही जानता हूँ।" ऐसा कहकर महाप्रभुने एक श्लोकका उच्चारण किया—

**तमालश्यामलत्विषि श्रीयशोदास्तनन्धये।**
**कृष्णनाम्नो रूढ़िरिति सर्व शास्त्र-विनिर्णयः॥**

(श्रीलक्ष्मीधर-कृत नामकौमुदी-श्लोक)

तमाल-श्यामवर्ण अर्थात् जिनका वर्ण तमालके समान श्याम है, तथा जो यशोदाजीका स्तनपान करनेवाले हैं—श्रीकृष्णके इन दो नामोंमें समस्त शास्त्रोंमें विनिर्णीत मुख्य अर्थ विद्यमान हैं। अतः मैं तो कृष्णनामके ये ही अर्थ मानता हूँ। इनके अतिरिक्त किसी अर्थमें मेरा अधिकार नहीं है।"

श्रीमन्महाप्रभु सर्वज्ञ हैं, वे जानते हैं कि श्रीवल्लभभट्टके द्वारा की गयी कृष्णनाम तथा भागवतकी व्याख्याएँ यथार्थ नहीं हैं, इसलिये महाप्रभु उनकी उपेक्षा कर रहे थे। तत्पश्चात् श्रीवल्लभभट्ट दुःखी मनसे अपने निवास स्थानपर लौट गये तथा श्रीमन्महाप्रभुके प्रति उनकी भक्तिमें कुछ कमी आ गयी।

## श्रीवल्लभभट्टका लज्जित होकर श्रीगदाधर पण्डितकी शरणमें जाना एवं श्रीगदाधर पण्डितकी दुविधा

तब श्रीवल्लभभट्ट श्रीगदाधर पण्डितके प्रति नाना प्रकारसे प्रीति दिखाकर उनके पास आना-जाना करने लगे। श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा उपेक्षा किये जानेके कारण नीलाचलका कोई भी भक्त उनकी व्याख्याओंको श्रवण नहीं कर रहा था। इससे श्रीवल्लभभट्ट बहुत ही लज्जित एवं अपमानित होकर श्रीगदाधर पण्डितके पास गये तथा दीनतापूर्वक उनसे कहने लगे—"मैंने आपकी शरण ली है। आप कृपा करके मेरे प्राणोंकी रक्षा करें। यदि आप मेरे द्वारा की गयी व्याख्याओंको श्रवण करेंगे, तभी मुझपर लगा लज्जारूपी कीचड़ धुल सकता है।"

यह सुनकर श्रीगदाधर पण्डित धर्मसङ्कटमें पड़ गये। वे परम दयालु होनेके कारण निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि उन्हें क्या करना चाहिए? श्रीगदाधर पण्डित विचार करने लगे, 'श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवल्लभभट्टके व्याख्याओंकी उपेक्षा की है। यदि मैं उन व्याख्याओंको श्रवण करूँगा, तो अवश्य ही महाप्रभुके मनको कष्ट होगा। यदि मैं श्रवण नहीं करता हूँ तो, श्रीवल्लभभट्ट कभी भी लज्जासे मुक्त नहीं हो पायेंगे।' यद्यपि श्रीगदाधर पण्डितने सुनना स्वीकार नहीं किया तथापि श्रीवल्लभभट्ट हठपूर्वक अपने द्वारा रचित कृष्णनामकी व्याख्याको पढ़कर उनको सुनाने लगे। श्रीवल्लभभट्ट समाजमें एक सम्मानित व्यक्ति होनेके कारण श्रीगदाधर पण्डित उन्हें बलपूर्वक व्याख्या सुनानेसे रोक नहीं पाये, वे मन-ही-मन श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगे—"हे कृष्ण! इस सङ्कटसे आप ही मेरी रक्षा कीजिए, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।" फिर वे विचार करने लगे—"श्रीमन्महाप्रभु अन्तर्यामी होनेके कारण मेरी स्थितिको अवश्य ही समझ जायेंगे। अतः मुझे उनसे कोई भय नहीं है, परन्तु उनके पार्षदोंको मैं कैसे समझाऊँगा?" यद्यपि श्रीगदाधर पण्डितके द्वारा श्रीवल्लभभट्टकी व्याखया श्रवण करनेमें किसी प्रकारका कोई दोष नहीं था, तथापि इसके लिए श्रीमन्महाप्रभुके भक्तगण श्रीगदाधर पण्डितके प्रति प्रणय-रोष करने लगे।

## श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीवल्लभभट्ट कृत श्रीनाम और श्रीभागवतकी व्याख्याओंका खण्डन

श्रीवल्लभभट्ट [अब] प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभुके पास आते तथा श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोंसे तर्क-वितर्क करते थे। श्रीवल्लभभट्ट जो भी सिद्धान्त स्थापित करते श्रीअद्वैताचार्य सहजरूपमें ही उसका खण्डन कर देते। जब भी श्रीवल्लभभट्ट श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोंके मध्यमें जाते, तो वे राजहंसोंके मध्य बगुलेकी भाँति प्रतीत होते। एक दिन श्रीवल्लभभट्टने श्रीअद्वैताचार्यसे पूछा—"जीव प्रकृति अर्थात् स्त्री है तथा श्रीकृष्णको सभी जीवोंका पति कहा जाता है। पतिव्रता होनेके कारण पत्नी अपने पतिका नाम उच्चारण नहीं करती, किन्तु आप लोग तो कृष्णका नाम लेते हैं—यह कैसा धर्म है?" श्रीअद्वैताचार्यने कहा—"आपके सामने मूर्तिमान् धर्म विराजमान हैं। अतः आप इन्हींसे पूछ लीजिये। ये ही आपको इसका प्रमाण देंगे।" तब श्रीमन्महाप्रभुने कहा-"भट्ट! तुम्हें धर्म-अधर्मका ज्ञान नहीं है। पतिकी आज्ञाका पालन करना ही पतिव्रताका धर्म होता है। निरन्तर नाम लेनेकी आज्ञा पति अर्थात् भगवान्‌की है। इसलिये पतिव्रता स्त्री (जीव) को निरन्तर नाम सङ्कीर्तन करना चाहिए, वह अपने पतिकी अवज्ञा नहीं कर सकती। इसलिये भक्त (जीव) सदा कृष्ण-सङ्कीर्तन करके नामका फल प्राप्त करते हैं। नामके फलस्वरूप उसका श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होता है।" यह सुनकर श्रीवल्लभभट्ट अवाक् रह गये, अर्थात् उनके मुखसे एक शब्द न निकला। वे अत्यन्त दुःखी मनसे अपने घर आये तथा विचार करने लगे—"प्रतिदिन इस सभामें मेरी पराजय ही होती है। यदि किसी भी प्रकारसे एकबार भी मेरी विजय हो जाये तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी तथा मेरी लज्जा भी दूर हो जायेगी। परन्तु मैं ऐसा क्या करूँ जिससे मेरी बातका कोई भी खण्डन न कर सके?"

ऐसा विचार करते हुए श्रीवल्लभभट्ट अगले दिन पुनः श्रीमन्महाप्रभुके पास आये तथा उस सभामें गर्वसे कहने लगे—"प्रभो! मैंने भागवतमें श्रीधरस्वामीकी व्याख्याका खण्डन किया है। मैं उनकी व्याख्याको ग्रहण नहीं कर सकता। जहाँ जो प्रसङ्ग आता है, उसी प्रकारसे वे व्याख्या कर देते हैं। इस प्रकार श्रीधरस्वामीकी व्याख्यामें सङ्गति नहीं है, इसलिये उसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।" यह वक्तव्य सुनते ही श्रीमन्महाप्रभु हँसते हुए बोले—"जो व्यक्ति 'स्वामी'(पति)को नहीं मानता, मैं उसकी गणना वेश्याओंमें करता हूँ।" ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभुने मौन धारण कर लिया। महाप्रभुका ऐसा उत्तर सुनकर सभी भक्तोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। जगत्‌का कल्याण करनेके लिए ही श्रीगौर-अवतार हुआ है। श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभभट्टके हृदयके अभिमानको जान गये थे। [श्रीवल्लभभट्टने भागवतकी सुबोधिनी नामक एक टीका लिखी थी तथा वे देश-विदेशमें उसका प्रचार कर रहे थे। एकबार वे दक्षिण देशमें भ्रमण करते हुए विजयनगरमें पधारे। वहीं एकबार विद्वत् सभामें श्रीशङ्कराचार्य-सम्प्रदायमें शङ्करका अवतार कहलाने वाले एक दिग्गज विद्वानके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। श्रीवल्लभभट्टने उनसे पूछा—"क्या आप '*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*'—इस वाक्यको मानते हैं?" उन शङ्कर-सम्प्रदायके विद्वानने कहा—"अवश्य ही, हम इसे महावाक्य मानते हैं।" श्रीवल्लभभट्टने कहा—"तो श्रीशङ्कराचार्यने कहा है-'*ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः*', यदि सबकुछ ब्रह्म ही है, तो आप जगत्‌को मिथ्या क्यों कहते हैं?" वे विद्वान् जो भी उत्तर देते, श्रीवल्लभभट्ट उसका खण्डन कर देते। अन्तमें श्रीवल्लभभट्टने उन्हें परास्त कर दिया। तब एक सौ आठ सोनेके घड़ोंके जलसे श्रीवल्लभभट्टका अभिषेक किया गया। इसे 'कनक-अभिषेक' कहा जाता है। यह सम्मान पानेके पश्चात् श्रीवल्लभभट्टके मनमें कुछ अभिमान आ गया था। जैसे जब श्रीब्रह्माने दक्ष प्रजापतिका अन्य समस्त प्रजापतियोंके अधिपतिके रूपमें अभिषेक किया था, तब दक्षके हृदयमें अभिमान आ गया था।] इसलिये श्रीमन्महाप्रभु नाना प्रकारसे श्रीवल्लभभट्टके

विचारोंका खण्डनकर उनके हृदयके अभिमानको नष्ट करनेका प्रयास कर रहे थे, जैसे द्वापरयुगमें श्रीकृष्णने इन्द्रका अभिमान नष्ट किया था। परन्तु अज्ञ जीव अपने हितको अहित ही मानता है। किन्तु बादमें जब उसका अहङ्कार दूर हो जाता है, तब वह अपने वास्तविक हितको देख पाता है।

## श्रीवल्लभभट्टको अपनी दोष-त्रुटिका अनुभव होना एवं उनका श्रीमन्महाप्रभुसे क्षमा-याचना करना

रातको घरमें आकर श्रीवल्लभभट्ट विचार करने लगे—"पूर्वमें जब मैं महाप्रभुसे मिला था, तब उन्होंने मुझपर प्रचुर कृपा की थी। अपने भक्तोंके सहित मेरे घरमें भोजन भी किया था। परन्तु अब वे मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं? बार-बार मेरा अपमान क्यों कर रहे हैं? अब उनका मन मुझसे क्यों हट गया है?" बहुत सोच-विचारके बाद उन्होंने निश्चित किया—"मेरा हृदय अभिमानसे भरा हुआ है। मेरे हृदयमें सबको परास्त करके सबसे सम्मान पानेकी भावना भरी हुई है। श्रीमन्महाप्रभु मेरे इस अभिमानको खण्डितकर मेरे हृदयको शुद्ध बनानेके लिए ही बार-बार मेरा अपमान कर रहे हैं। वे तो कृपापूर्वक मेरा हित करनेमें लगे हुए हैं, परन्तु मैं इसे अपना अहित मान रहा हूँ, उसी प्रकार जिस प्रकार मूर्ख इन्द्रने श्रीकृष्णके ऊपर कोप किया था।"

ऐसा विचारकर अगले दिन प्रातः काल श्रीवल्लभभट्ट श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंमें उपस्थित हुए तथा दीनतापूर्वक कहने लगे—"प्रभो! मैं अज्ञानी जीव हूँ। मैंने एक अज्ञकी भाँति कार्य किया है। मैंने आपके सामने अपना पाण्डित्य दिखानेकी मूर्खता की है। आप तो ईश्वर हैं, इसलिये आपने कृपापूर्वक मेरा अपमानकर मेरे अभिमानको नष्ट कर दिया है। परन्तु मैं मूर्ख अपने हितको अपना अपमान समझ रहा था। परन्तु अब आपकी कृपा-रूपी अञ्जनसे मेरा गर्व-रूपी अन्धापन नष्ट हो गया है। प्रभो! मैंने आपके श्रीचरणकमलोंमें भयङ्कर अपराध किये हैं। आप उन अपराधोंको क्षमा कीजिए, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप मेरे सिरपर अपने श्रीचरणकमल रख दीजिए।"

## श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीवल्लभभट्टपर शासन-शिक्षारूपी कृपा एवं पुनः उनका निमन्त्रण स्वीकार करना

श्रीमन्महाप्रभु मुस्कुराते हुए कहने लगे—"भट्ट! आप पण्डित भी हैं तथा महाभागवत भी हैं। ये दो गुण जहाँपर रहते हैं, वहींपर अहङ्कार-रूपी पर्वत नहीं रह सकता। आपने श्रीधरस्वामीकी टीकाकी निन्दाकर भागवतकी अपनी टीका लिखी है। आपके हृदयमें इतना अहङ्कार भरा हुआ है कि आप श्रीधरस्वामीको प्रामाणिक ही नहीं मानते। जबकि वास्तव सत्य यह है कि श्रीधरस्वामीकी कृपासे ही भागवतको समझा जा सकता है। मैं स्वयं भी जगद्गुरु श्रीधरस्वामीको अपना गुरु मानता हूँ। आप अहङ्कारके वशीभूत होकर श्रीधरस्वामीके विचारोंके ऊपर जो कुछ भी लिखोगे, वह वास्तविक अर्थके विपरीत ही होगा तथा लोग उसे स्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु जो कुछ भी श्रीधरस्वामीके अनुगत होकर लिखोगे वह सर्वलोकमान्य होगा। लोग उसे माननेके लिए बाध्य होंगे। कोई भी उसका खण्डन नहीं कर पायेगा। अतः आप अभिमानको परित्यागकर श्रीधरस्वामीके आनुगत्यमें भागवतकी टीका लिखिये तथा श्रीकृष्णका भजन कीजिये। अपराधोंको छोड़कर कृष्णनाम-सङ्कीर्तन कीजिये, इस प्रकार अतिशीघ्र ही आप श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंको प्राप्त कर लेंगे।"

यह सुनकर श्रीवल्लभभट्ट अति आनन्दित हुए। वे हाथ जोड़कर दीनतापूर्वक प्रभुसे बोले—"प्रभो! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तथा आपने मेरे अपराध क्षमा कर दिये हैं, तो एकबार पुनः अपने भक्तोंके साथ मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लीजिए।" श्रीमन्महाप्रभुका अवतार तो हुआ ही है जगत्का उद्धार करनेके लिए। अतः श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवल्लभभट्टको प्रसन्न करनेके लिए

सहर्ष उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। अगले दिन जब महाप्रभुने अपने समस्त भक्तोंके साथ उनके घरमें प्रसाद पाया तो श्रीवल्लभभट्ट अत्यन्त आनन्दित हुए।

## श्रीगदाधर पण्डितके भाव तथा श्रीमन्महाप्रभुका उनके प्रति प्रेम एवं श्रीवल्लभभट्टका श्रीगदाधर पण्डितसे दीक्षा ग्रहण करना

श्रीवल्लभभट्ट पहले वात्सल्य-रसके उपासक थे। वे श्रीकृष्णकी बालगोपाल-मन्त्रसे उपासना करते थे। श्रीगदाधर पण्डितके सङ्गसे उनका मन परिवर्तित हो गया तथा उन्होंने अपने मनको किशोर-गोपालकी उपासनामें लगा दिया। वे श्रीगदाधर पण्डितसे मन्त्र प्राप्त करना चाहते थे। परन्तु श्रीगदाधर पण्डित बोले—"मैं ऐसा कार्य नहीं कर सकता। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, मेरे प्रभु श्रीगौरचन्द्र हैं। मैं उनकी आज्ञाके बिना कोई भी कार्य नहीं करता। आप जो मेरे पास आते हैं, महाप्रभु पहलेसे ही उसके लिए मुझे उलाहना देते हैं, और यदि आपको मन्त्र दूँगा तो पता नहीं वे क्या करेंगे?"

इस प्रकार कुछ दिन बीतनेके पश्चात् जब श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभभट्टपर प्रसन्न हुए, तो श्रीवल्लभभट्टके निमन्त्रणके दिन श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द तथा श्रीगोविन्दको भेजकर श्रीगदाधर पण्डितको बुलवाया। मार्गमें श्रीस्वरूप दामोदरने श्रीगदाधर पण्डितसे कहा—"श्रीमन्महाप्रभुने आपकी परीक्षा लेनेके लिए ही आपकी उपेक्षा की थी। किन्तु आपने उनकी इस बातका विरोध करते हुए उन्हें उलाहना क्यों नहीं दिया? आप भयभीत होकर उनके अत्याचारको क्यों सहन करते रहे?" श्रीगदाधर पण्डित बोले—"महाप्रभु सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं। उनसे हठ करना मुझे अच्छा नहीं लगता। वे जो कुछ भी कहते हैं, उसे मैं शिरोधार्य करता हूँ। वे स्वयं ही कृपापूर्वक गुण-दोषका विचार करेंगे।" ऐसा कहकर श्रीगदाधर पण्डित महाप्रभुके पास आये तथा रोते हुए उनके श्रीचरणकमलोंमें प्रणत हुए। तब श्रीमन्महाप्रभुने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए श्रीगदाधर पण्डितको आलिङ्गन किया तथा सभी भक्तोंको सुनाते हुए उनसे मधुर वचनोंसे कहने लगे—"मैंने तुम्हें रोषपूर्ण व्यवहारके द्वारा उत्तेजित करनेकी बहुत चेष्टा की, किन्तु तुम उत्तेजित नहीं हुए तथा तुमने क्रोधमें आकर मुझे कुछ भी नहीं कहा। केवल चुपचाप सहन करते रहे। तुमने अपने इस सरल भावसे मुझे खरीद लिया है।" श्रीगदाधर पण्डितके भाव तथा महाप्रभुके प्रति उनके प्रेमका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिये महाप्रभुका एक नाम है—'गदाधर-प्राणनाथ'। श्रीगदाधर पण्डितके प्रति महाप्रभुकी कृपाका वर्णन नहीं किया जा सकता। लोग महाप्रभुको 'गदाइ-गौराङ्ग' अर्थात् 'गदाधरके गौराङ्ग' कहकर पुकारते हैं।

श्रीमन्महाप्रभुकी लीलाओंको कौन समझ सकता है? उनकी एक-एक लीलामें गङ्गाकी सैकड़ों धाराएँ बहती हैं। इस लीलाके माध्यमसे महाप्रभुने श्रीगदाधर पण्डितकी सज्जनता तथा उनके दृढ़-प्रेमको सभी भक्तोंके सामने प्रकाशित किया। इसी लीलाके माध्यमसे महाप्रभुने श्रीवल्लभभट्टके अभिमानरूपी कीचड़को परिष्कार कर उन्हें शुद्ध-निर्मल किया। इसी लीलाके माध्यमसे उन्होंने सभीको शिक्षा प्रदान की। वास्तवमें महाप्रभुके हृदयमें श्रीवल्लभभट्ट तथा श्रीगदाधर पण्डितके प्रति कृपा ही थी, उन्होंने केवल बाह्यरूपमें ही उनके प्रति उपेक्षाका भाव प्रकाशित किया था। अतः जो व्यक्ति श्रीमन्महाप्रभुके बाहरी आचरणको ही ग्रहण करता है, वह वास्तविक तथ्यमें प्रवेश न कर पानेके कारण अपराध करके पतित हो जाता है।

तत्पश्चात् एकदिन श्रीगदाधर पण्डितने भी श्रीमन्महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने अपने समस्त भक्तोंके साथ श्रीगदाधर पण्डितके वासस्थानमें प्रसाद ग्रहण किया। वहींपर श्रीवल्लभभट्टने श्रीमन्महाप्रभुसे आज्ञा प्राप्त की तथा उनकी श्रीगदाधर पण्डितसे दीक्षा ग्रहण करनेकी कामना पूर्ण हुई।

क्रमशः

# विरह–सम्वाद

[सम्पादकीयः–श्रीश्रीभागवत–पत्रिका वर्ष–२१, संख्या–१०–१२, का मार्च २०२६में प्रकाशित होनेवाला यह अङ्क किन्हीं कारणोंसे विलम्बसे जुलाई २०२६में प्रकाशित हो रहा है। अतः श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित जिन वैष्णवोंने मार्च २०२६से जून २०२६के बीचमें इस जगत्से प्रयाण किया है, उनका विरह–सम्वाद श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके इसी अङ्कमें ही दिया जा रहा है।]

## श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजकी स्मृतिमें

विगत २० मार्च, २०२६ शुक्रवार, विक्रम संवत् २०८३ अमान्तके प्रथम दिन, अर्थात् चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा (गौर–प्रतिपदा) तिथिपर, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके निष्कपट एवं एकनिष्ठ चरणाश्रित शिष्य श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज ब्रह्ममुहूर्त (निशान्त–लीला)के पावन समय, जो उनके भजनका अत्यन्त प्रिय समय था, व्रजमण्डलमें श्रीराधाकुण्ड स्थित अपनी भजन–कुटीसे श्रीगुरु एवं श्रीगौराङ्गकी विवर्धनशील सेवाओंके लिये प्रयाण किए है।

### प्रारम्भिक जीवन एवं कृष्णभावनामृतसे परिचय

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजका जन्म कनाडाके टोरण्टो नगरमें १२ जून, १९४९ ई., रविवारको, भारतीय तिथिके अनुसार पूर्णिमान्त आषाढ़ मासके कृष्णपक्षकी द्वितीया तिथि अर्थात् भगवान् श्रीजगन्नाथके स्नान–पूर्णिमा महोत्सवके दो दिन पश्चात्, अंग्रेजी मूलके माता–पिताके घरमें हुआ था। बोर्डिंग विद्यालयमें अपनी शिक्षा पूर्ण करनेके बाद वे उन्नीस वर्षकी आयुमें घर छोड़कर व्यापक रूपसे विभिन्न देशोंकी यात्रा करते रहे और अन्ततः सन् १९७० ई. के दशकमें ऑस्ट्रेलियामें जाकर बस गए।

सन् १९७९ ई. में कार्तिक मासके प्रथम दिन वे ऑस्ट्रेलियाके मुर्विलम्बाह (Murwillumbah) स्थित न्यू गोवर्धन फार्मका दर्शन करनेके लिये पहुँचे। वहाँ पर वे श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके ग्रन्थों तथा उनके अनुगतजनोंके माध्यमसे धीरे–धीरे कृष्णभक्तिके सिद्धान्तोंसे अवगत होने लगे। तबसे उन्होंने पूर्ण निष्ठा एवं समर्पणके साथ भक्तिमार्गको स्वीकार कर लिया और क्रमशः उसके दार्शनिक विचारों और साधनामें स्वयंको निमग्न कर दिया। तत्पश्चात् वे कुछ वर्षों तक उसी फार्ममें मन्दिराध्यक्षके रूपमें भी सेवारत रहे।

### श्रील गुरुदेवका सान्निध्य एवं आश्रय–प्राप्ति

भक्तिके अङ्गोंका गहनरूपसे अभ्यास करने तथा पारमार्थिक साधनाके अनुकूल सरल जीवन व्यतीत करनेकी तीव्र आकांक्षासे प्रेरित होकर सन् १९९१ ई. में वे अपनी पत्नी एवं पुत्रके साथ श्रीवृन्दावनधाममें आ गए। यहाँ आकर उन्होंने निरन्तर श्रीनाम–जपमें अपने जीवनको समर्पित करना आरम्भ कर दिया और क्रमशः अपने दैनिक जपका संकल्प बढ़ाते

हुए प्रतिदिन एक लाख नामजप संख्या तक पहुँचे। प्रारम्भमें उन्होंने इस्कॉन वृन्दावनमें विविध प्रकारकी सेवाएँ कीं। तत्पश्चात् सन् १९९४ ई. में उन्होंने नन्दगाँवके समीप स्थित श्रीवृन्दा-कुण्डमें पाँच मास तक निवास करते हुए भजन किया तथा वहाँ श्रीवृन्दादेवीकी अर्चन-सेवाका सौभाग्य प्राप्त किया।

सन् १९९१ ई. से १९९७ ई. के मध्य वे अत्यन्त उत्साहपूर्वक श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज (श्रील गुरुदेव) की हरिकथाका नियमित श्रवण करते रहे, प्रतिवर्ष श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें आयोजित श्रीव्रजमण्डल परिक्रमामें सम्मिलित होते रहे तथा समय-समयपर मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उनके संरक्षणमें निवास भी करते रहे। इस सत्सङ्ग एवं कृपाके प्रभावसे उन्होंने श्रील गुरुदेवको एक ऐसे महाभागवतके रूपमें अनुभव किया, जो उनके हृदयकी चिरन्तन अभिलाषा—श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकी प्रेमसेवा—की प्राप्तिके पथपर उनका मार्गदर्शन कर सकते थे। फलतः उन्होंने पूर्ण श्रद्धाके साथ श्रील गुरुदेवके श्रीचरणकमलोंमें आत्मसमर्पण किया।

## दीक्षा एवं संन्यास

फ़रवरी १९९७ ई. में उन्होंने श्रील गुरुदेवसे हरिनाम एवं दीक्षा ग्रहण की और उन्हें नन्दकिशोर दास नाम प्रदान किया गया। सन् १९९७ ई. एवं १९९८ ई. के मध्य उन्हें श्रील गुरुदेवके साथ फ़िजी, ऑस्ट्रेलिया, मलेशिया तथा अन्य अनेक देशोंकी प्रचार-यात्राओंमें योगदान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन यात्राओंके दौरान गौड़ीय-वैष्णव सिद्धान्तों, विशेषतः श्रीचैतन्य महाप्रभुके अवतरणके कारण, बद्धजीवोंके प्रति उनके अनुपम उपहार तथा रूपानुग-भजनके अद्वितीय मार्गके विषयोंपर श्रील गुरुदेवके शिक्षाप्रद एवं हृदयस्पर्शी प्रवचनोंने उनके हृदयपर गहरा प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप अपने श्रीगुरुपादपद्मके प्रति उनकी श्रद्धा, कृतज्ञता तथा आसक्ति निरन्तर वर्धित होती गई। सन् २००० ई. में वे मथुरामें यमुनाके पार स्थित श्रील गुरुदेव द्वारा नवनिर्मित दुर्वासा ऋषि आश्रममें रहने लगे। तत्पश्चात् सन् २००५ ई. की गौर-पूर्णिमाके पावन अवसरपर उनके परमाराध्य श्रील गुरुदेवने उन्हें संन्यासाश्रम प्रदान कर 'श्रीभक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज' नाम दिया।

## प्रकाशन-सेवा

श्रील गुरुदेवकी जिन अनेक सेवाओंमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजने अपना अमूल्य योगदान दिया, उनमें उनकी हिन्दी कृतियों श्रीमद्भगवद्गीता तथा जैवधर्मके अंग्रेज़ी अनुवादोंका प्रकाशन विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके पश्चात् भी उन्होंने इस सेवाको निरन्तर आगे बढ़ाया। उन्होंने प्रचार एवं व्यापक वितरणके उद्देश्यसे अनेक लघु पुस्तिकाओंका प्रकाशन कराया, जिनमें राधाकुण्ड परिक्रमा, नवद्वीपधाम परिक्रमा, धर्म क्या है? (जैवधर्मके प्रथम परिच्छेद का अनुवाद) तथा सुरभीकुञ्ज प्रमुख हैं।

## भक्तोंको हरिनाम-जपके लिए प्रेरित करना

सन् २०१० ई. में श्रील गुरुदेवके नित्य-लीलामें प्रवेश करनेके उपरान्त भी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजने पश्चिमी देशोंमें अपनी प्रचार-सेवाको निरन्तर जारी रखा। वे प्रतिदिन एक लाख हरिनामके जपमें दृढ़प्रतिज्ञ थे। समयके साथ उनके हृदयमें यह उत्कट भावना और भी प्रबल होती गई कि भक्तोंमें भी श्रीनामके प्रति वास्तविक रुचि एवं आसक्ति विकसित हो। इसी उद्देश्यसे उन्होंने विश्वके विभिन्न देशों, जैसे इटली, इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड आदिमें जप-शिविरोंका आयोजन प्रारम्भ किया। इन शिविरोंमें उनके मार्गदर्शनमें भाग लेनेवाले भक्त प्रतिदिन चौंसठ

माला हरिनामका जप करते हुए पूर्णरूपसे नाम-भजनमें निमग्न रहनेका अभ्यास करते थे।

अगले लगभग दो दशकोंमें इन जप-शिविरोंने विश्वभरके असंख्य भक्तोंके पारमार्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। अनेक भक्त बार-बार इनमें सम्मिलित हुए, क्योंकि इन शिविरोंके माध्यमसे उन्हें स्वयंमें श्रीनामके प्रति वर्धित हुई रुचिका अनुभव हुआ तथा वे श्रीनामप्रभुके साथ अपने सम्बन्धको और अधिक गहन बनाना चाहते थे।

सन् २०१५ ई. में एक ही दिनमें दो तीव्र हृदयाघात होनेके कारण उनकी शारिरिक क्षमता अत्यन्त क्षीण हो गयी और उनकी प्रचार-यात्राएँ भी बहुत सीमित हो गईं। तथापि भक्तोंमें श्रीनामके प्रति वास्तविक रुचि एवं आस्वादन तथा श्रीमद्भागवतम्के गम्भीर अध्ययनकी प्रेरणा जगानेकी उनकी उत्कट चिन्ता जीवनपर्यन्त कभी कम नहीं हुई।

## श्रीमद्भागवतम्के प्रति उनका लगाव

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजने विश्वभरके भक्तोंको श्रीमद्भागवतम्के अध्ययनमें अत्यन्त स्नेहपूर्वक मार्गदर्शन प्रदान किया। अपनी प्रतिदिन होनेवाली ऑनलाइन कक्षाओंमें वे विद्यार्थियोंको केवल सावधानीपूर्वक पाठ करनेके लिए ही नहीं, बल्कि अध्ययनके समय टिप्पणियाँ लिखने तथा उन्होंने जो समझा है उसका संक्षिप्त ध्वनि-सार (ऑडियो सारांश) तैयार करनेके लिए भी प्रेरित करते थे।

उन्हें दृढ़ विश्वास था कि श्रीमद्भागवतम्का श्रद्धापूर्वक श्रवण, गम्भीर अध्ययन तथा उसका मननपूर्वक कथन साधकके जीवनमें गहन पारमार्थिक परिवर्तन ला सकता है। इसी विश्वासके आधार पर उन्होंने अध्ययन की यह विशिष्ट पद्धति विकसित की, जिससे भक्तोंकी तत्त्वबोध एवं आत्मानुभूति और अधिक गहरी हो सके।

विभिन्न वर्षोंके दौरान उन्होंने उन साठसे भी अधिक भक्तोंको श्रीमद्भागवतम्के बारह-स्कन्धोंका सम्पूर्ण सेट भेंट किया, जो आर्थिक कारणोंसे उसे स्वयं प्राप्त करनेमें असमर्थ थे।

## भगवत्-धामोंको भक्तोंके समीप लाना

सन् २०१८ ई. से श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजने उन भक्तों तक भी श्रीधामकी अनुभूति पहुँचानेका अभिनव प्रयास प्रारम्भ किया, जो कार्तिकके समय व्रजधाम आनेमें असमर्थ थे। प्रारम्भमें उन्होंने व्रजकी विविध लीलास्थलियोंका परिचय देनेवाली ध्वनि-रिकॉर्डिंग तैयार कीं और उन्हें ईमेलके माध्यमसे उत्सुक भक्तों तक पहुँचाया।

आगामी वर्षोंमें उन्होंने जूम तथा यूट्यूबके माध्यमसे अनेक ऑनलाइन परिक्रमाओंका आयोजन किया। इन परिक्रमाओंके दौरान वे केवल लीलास्थलियोंकी महिमाका वर्णन ही नहीं करते थे, बल्कि चित्रों, मानचित्रों, वंशावलियों, सारणियों तथा विभिन्न रेखाचित्रोंकी सहायतासे उन्हें और भी जीवन्त एवं सुबोध बना देते थे। इन ऑनलाइन परिक्रमाओंके माध्यमसे विश्वभरके अनेकानेक भक्त, धामसे दूर रहते हुए भी, श्रीधामके माहात्म्य एवं तत्त्वकी अधिक गहन अनुभूति प्राप्त कर सके।

## व्रज एवं नवद्वीपधाम वास

श्रील गुरुदेवके द्वारा दिये गये श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर रचित 'रागवर्त्म-चन्द्रिका' ग्रन्थपर आधारित प्रवचनोंके संकलन 'The Hidden Path of Devotion' से प्रेरित होकर श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी

महाराजके हृदयमें रागानुगा-भक्तिके तत्त्वको और अधिक गहरायीसे समझनेकी प्रबल अभिलाषा जागृत हुई। इसी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने सन् २०१२ ई. से २०१६ ई. तक श्रीगोवर्धनमें तथा २०१६ ई. से २०१७ ई. तक श्रीराधाकुण्डमें निवास किया।

अपने गुरुवर्गकी कृपासे जब उन्होंने यह अनुभव किया कि श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके श्रीधामकी कृपाके बिना श्रीराधाकुण्डकी वास्तविक सेवामें प्रवेश सम्भव नहीं है, तब वे श्रीनवद्वीपधाम स्थित गोद्रुमद्वीप चले आए। वहाँ प्रारम्भमें उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके श्रीस्वानन्द-सुखद-कुञ्जके समीप निवास किया और बादमें वे श्रीसुरभी-कुञ्जमें रहने लगे।

गोद्रुमद्वीपमें निवासके दौरान वे प्रति सप्ताह अपने विद्यार्थियोंके साथ नवद्वीपके विभिन्न द्वीपोंकी परिक्रमा करते थे। सन् २०२५ई. में वे पुनः श्रीराधाकुण्ड लौट आए। वहाँ उन्होंने अपनी नियमित राधाकुण्ड-परिक्रमा पुनः प्रारम्भ की तथा समय-समय पर वे मोटरसाइकिल द्वारा श्रीगिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा भी किया करते थे।

## उनका आदर्श जीवन

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज अपने अत्यन्त अनुशासित एवं नियमित जीवनके लिए विशेष रूपसे विख्यात थे। वे प्रतिदिन सायंकाल शीघ्र विश्राम करते तथा रात्रि १ बजे उठ जाते थे। प्रतिदिन कम-से-कम चौंसठ माला हरिनामका जप करना उनका अटल नियम था। शेष समय वे अपने परम प्रिय श्रीमद्भागवतम् तथा गुरु-वर्गके अन्य ग्रन्थोंके अध्ययन एवं मननमें निमग्न रहते थे।

अपने व्यक्तिगत आचरणके द्वारा उन्होंने विश्वभरके अनेकानेक भक्तों, चाहे वे कोई अकेला साधक हो अथवा सामूहिक रूपसे साधना करनेवाले भक्त हों, सभीको अधिक मनोयोगपूर्वक हरिनाम-जप करने तथा प्रतिदिन शास्त्र-अध्ययनको जीवनका अभिन्न अङ्ग बनाने की प्रेरणा दी।

यद्यपि उन्होंने अपने सम्पूर्ण भक्तिमय जीवन, विशेषकर व्रजवासके पैंतीस वर्षोंमें, अत्यन्त कठोर साधन किया तथा सदैव भक्तोंको अपने साधनमें अधिक परिश्रम करनेके लिए प्रेरित किया, तथापि वे कभी भी उन लोगोंसे, जो ऐसा करनेमें समर्थ नहीं थे, अपनी जैसी साधना की अपेक्षा नहीं रखते थे। इसके विपरीत, वे सदैव उत्साहवर्धक वचन, स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा अपनी करुणामयी प्रेरणा द्वारा दूसरोंको अपने पारमार्थिक जीवनको अधिक गम्भीरतासे ग्रहण करनेके लिए प्रोत्साहित करते थे।

जो भी पारमार्थिक मार्गदर्शनके लिए उनके पास आता, वह अनुभव करता कि महाराजके पास उसके लिए सदैव समय है। वे प्रत्येक व्यक्तिकी परिस्थितिको भलीभाँति समझकर अत्यन्त व्यावहारिक, विचारपूर्ण तथा उसके जीवनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाली सलाह प्रदान करते थे। यद्यपि उनका अन्तःकरण निरन्तर

दिव्य चिन्तन एवं भजनमें निमग्न रहता था, तथापि उन्होंने कभी भी अपने स्वाभाविक स्नेह, आत्मीयता एवं मानवीय संवेदनशीलताको नहीं खोया।

## विशिष्ट शिक्षण-शैली

जिन्होंने भी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजका सान्निध्य प्राप्त किया, चाहे वह थोड़े समयके लिए ही क्यों न रहा हो, वे प्रायः अधिक सावधानीपूर्वक हरिनाम-जप करने, शास्त्रोंका अधिक गम्भीर अध्ययन करने तथा अपने पारमार्थिक जीवनको अधिक निष्ठापूर्वक व्यतीत करनेके लिए प्रेरित हुए बिना नहीं रह पाये।

श्रीगुरु, गुरुवर्ग, श्रीगौराङ्ग महाप्रभु एवं उनके पार्षदों, श्रीश्रीराधाकृष्ण, श्रीनाम, श्रीधाम, श्रीमद्भागवतम् तथा अन्य वैष्णव-शास्त्रोंके प्रति उनका उत्साह अत्यन्त संक्रामक था। जैसे-जैसे यूट्यूब एवं फ़ेसबुक पर उनकी प्रत्यक्ष कक्षाओंमें सम्मिलित होनेवाले भक्तोंकी संख्या बढ़ती गई, वे इन कक्षाओंमें सदैव गम्भीर एवं विचारपूर्ण चर्चाका स्वागत करते रहे और विद्यार्थियोंको प्रत्येक विषयका गहराईसे अध्ययन करनेके लिए प्रेरित करते रहे।

वे प्रति सप्ताह अनेक ऑनलाइन प्रवचन एवं अध्ययन-सत्र आयोजित करते थे, जिनमें उन्होंने जैवधर्म तथा अपने अन्तिम दिनोंमें श्रीचैतन्य-चरितामृत जैसे ग्रन्थोंका क्रमबद्ध अध्ययन कराया था। साथ ही वे व्यक्तिगत रूपसे, ऑनलाइन तथा ईमेलके माध्यमसे भी भक्तोंका मार्गदर्शन करते रहे।

उनका दृढ़रूपसे मानना था कि श्रील गुरुदेवसे उन्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसे अन्य साधकों तक पहुँचाना ही उनकी गुरु-सेवा है। वे केवल स्वयं व्याख्यान देने तक सीमित नहीं रहते थे। वे अनेक बार भक्तोंको किसी विषयपर संक्षिप्त प्रस्तुति तैयार करनेके लिए कहते, उसे अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनते, फिर आवश्यक संशोधन, गहन दृष्टिकोण तथा उत्साहवर्धन प्रदान करते। इस प्रकार वे भक्तोंको केवल हरिकथाका श्रवण करना ही नहीं, बल्कि उसका मनन करना, उसे स्पष्ट रूपसे प्रस्तुत करना तथा उसके सिद्धान्तोंको अपने जीवनमें धारण करना भी सिखाते थे।

उनके लगभग एक हजार रिकॉर्ड किए गए प्रवचन आज भी उनकी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं, जिनसे विश्वभरके निष्कपट साधक निरन्तर लाभान्वित हो रहे हैं।

## गोल्डन अवतार गुरुकुल

गोद्रुमद्वीपमें अपने निवासके समय श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजने 'गोल्डन अवतार गुरुकुल'के विकासमें अपना पर्याप्त समय, श्रम एवं स्नेह समर्पित किया। वे इसे श्रील गुरुदेवकी अत्यन्त प्रिय अभिलाषाओंमें-से एक मानते थे। इसकी स्थापनाके प्रारम्भिक चरणसे ही उन्होंने इसके उद्देश्यका उत्साहपूर्वक समर्थन किया तथा इसके विकासमें सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने न केवल इसके भौतिक स्वरूपके निर्माणमें सहयोग दिया, बल्कि इसकी पारमार्थिक नींवको सुदृढ़ बनानेमें भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उन्होंने गुरुकुल परिसरमें अनेक वृक्ष लगवाए, भवनकी योजना एवं निर्माणके सम्बन्धमें उपयोगी परामर्श दिए, अध्ययन हेतु आवश्यक ग्रन्थ एवं अन्य शैक्षिक सामग्री उपलब्ध कराई तथा बच्चोंको अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनकी भक्ति-साधनामें मार्गदर्शन दिया। वे प्रत्येक बालक या बालिकाको पारमार्थिक उन्नतिके लिये स्नेहपूर्वक पोषणीय एक स्वतंत्र आत्माके रूपमें

देखते थे। इसीलिए वे उनके शारीरिक, मानसिक एवं पारमार्थिक कल्याणका समान रूपसे ध्यान रखते हुए उन्हें श्रीश्रीराधाकृष्णके साथ अपने सम्बन्धको निरन्तर गहरा करनेके लिए क्रम-दर-क्रम प्रेरित करते रहते थे।

उनके मार्गदर्शन, संरक्षण एवं सहयोगसे 'गोल्डन अवतार गुरुकुल' आज एक उतरोत्तर वर्धित आध्यात्मिक समुदायके रूपमें विकसित हो रहा है, जिससे जुड़कर वर्तमानमें एक-सौ-बीससे अधिक परिवार लाभान्वित हो रहे हैं।

## उनके प्रमुख उपदेश-बिन्दु

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज प्रायः इस बात पर विशेष बल देते थे कि (१) 'सेवा ही प्रेमका वास्तविक लक्षण है'; (२) प्रेम निष्क्रिय नहीं, अपितु सदैव क्रियाशील एवं आनन्दमय उल्लाससे परिपूर्ण होना चाहिए; (३) वे कहते थे कि 'प्रेम-करना' केवल एक भावनामात्र ही नहीं, है, बल्कि यह एक 'क्रिया' (verb) है जिसमें एक सक्रिय सम्बन्ध होता है, इसलिए श्रीगुरु एवं श्रीकृष्णके साथ हमारा सम्बन्ध भी निरन्तर सक्रिय, सजीव एवं सेवा-प्रधान होना चाहिए; (४) वे यह भी सिखाते थे कि गुरुके साथ हमारा सम्बन्ध गुरु-सेवाके द्वारा पुष्ट एवं स्थापित होता है; (५) प्रत्येक साधककी कृष्ण तक पहुँचने की अपनी-अपनी व्यक्तिगत यात्रा होती है, ठीक वैसे ही जैसे बरसाना की साँकरी-खोरसे एक समयमें केवल एक ही व्यक्ति होकर निकल सकता है; (६) किसी भी संस्थाकी वास्तविक शक्ति उसके संगठनमें नहीं, बल्कि उसमें विराजमान शुद्धभक्तकी उपस्थितिमें निहित होती है; तथा (७) यद्यपि मार्ग हमें दिखाया जा सकता है, किन्तु उस मार्गपर चलना अन्ततः प्रत्येक साधकको स्वयं ही होता है।

## उनका प्रयाण

यद्यपि भक्तगण जानते थे कि पिछले कुछ समयसे श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजका देहिक स्वास्थ्य निरन्तर क्षीण एवं चिन्ताजनक होता जा रहा था, तथापि २० मार्च, २०२६ ई. को उनके प्रयाणका समाचार सुनकर विश्वभरके भक्त स्तब्ध रह गए।

उनकी इच्छाके अनुसार श्रीराधाकुण्ड स्थित शिव-खेड़ा श्मशान-स्थलीमें श्रीहरिनामके उच्च-कीर्तनके मध्य उनका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न किया गया। तत्पश्चात् गौड़ीय-वैष्णव-परम्पराके अनुसार उनका अस्थि-विसर्जन श्रीवृन्दावनधाममें श्रीयमुनाजीमें तथा श्रीगोवर्धनकी तलहटीमें होनेसे वे धामरजको प्राप्त हुए।

उनका विरह-महोत्सव श्रीवृन्दावनमें गोपीनाथ भवनमें, श्रीनवद्वीप धाममें गोल्डन अवतार गुरुकुलमें, अमेरिकाके कैलिफोर्निया स्थित न्यूव्रज (बैजर) और हवाई द्वीपसमूहमें सम्पन्न हुआ। उनके प्रति श्रद्धा, प्रीति एवं कृतज्ञताकी ऐसी अभूतपूर्व धारा प्रवाहित हुई कि विश्वभरके भक्तोंको अपनी स्मृतियाँ एवं भावाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर देनेके लिए लगातार कई दिनों तक सोलह ऑनलाइन स्मरण-सभाओंका आयोजन किया गया जिनकी एकत्रित अवधि प्रायः ४० घण्टे की हुई। इन सभाओंमें अनेकानेक भक्तोंने अपने पारमार्थिक जीवन पर उनकी शिक्षा, प्रेरणा और सङ्गके गहन एवं स्थायी प्रभावका भावपूर्ण वर्णन किया।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज श्रील गुरुदेवके प्रति एकनिष्ठ समर्पण, भक्ति-साधनमें अपने दृढ़ आदर्श तथा दूसरोंके हृदयमें श्रीनाम एवं शास्त्र-अध्ययनके प्रति वास्तविक रुचि जागृत कराने की अपनी निष्कपट चेष्टओंके लिए सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे। विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि वे प्रत्येक व्यक्तिके पारमार्थिक कल्याणके प्रति समान रूपसे चिन्तित रहते थे, चाहे वह उनका शिष्य अथवा अनुयायी हो या न हो।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजके प्रयाणसे हम उनके भजन-आदर्श एवं उनके द्वारा साक्षात्की जानेवाली गौड़ीय गुरुवर्गकी वाणी-सेवाके दर्शनसे वञ्चित हुए हैं। उनके अदर्शनसे अनेक वैष्णव विरह-सन्तप्त हैं।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज की जय!
श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज की जय!
श्रीगुरु-परम्परा की जय!

(श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजके शिष्योंके सौजन्यसे)

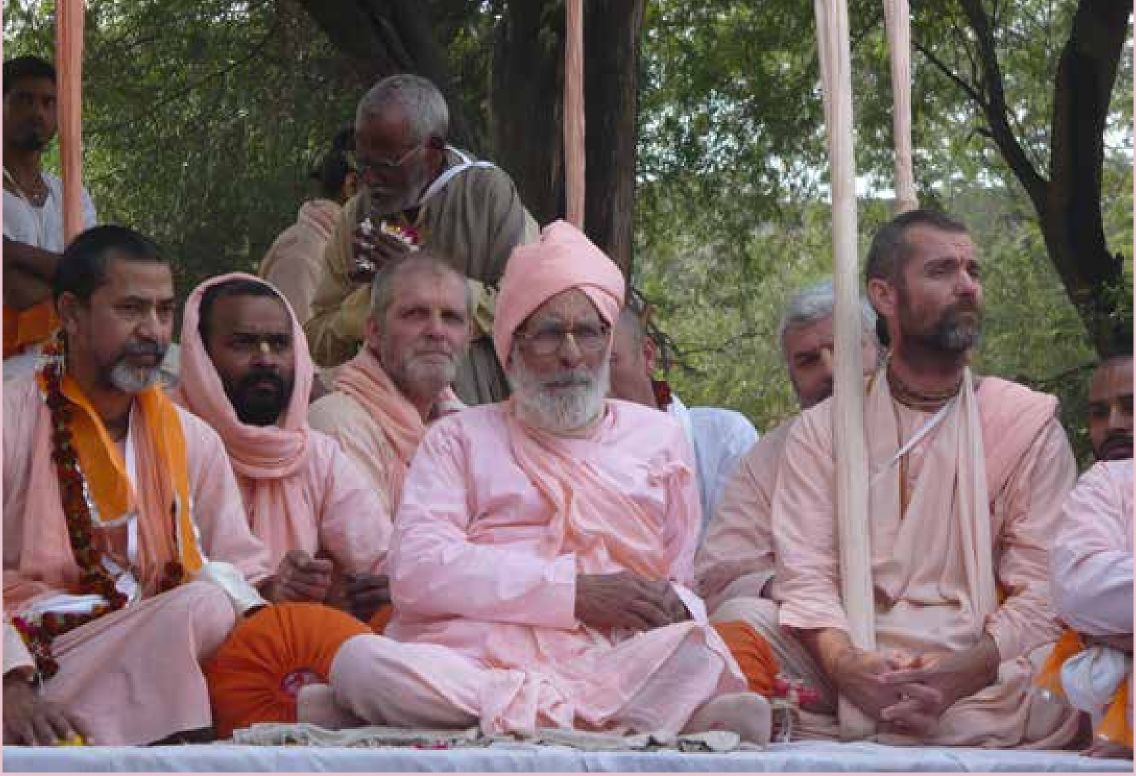

# श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजकी स्मृतिमें

विगत १३ मई, २०२६, बुधवारको, अपरा एकादशी-व्रत पालनके दिन, अपराह्न १:४१ बजे तदानुसार विक्रम संवत् २०८३ पूर्णिमान्त ज्येष्ठमासके कृष्णपक्षकी द्वादशी-तिथि—श्रील वृन्दावन दास ठाकुरके पावन आविर्भावकी शुभ तिथिपर श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज एवं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके निष्कपट एवं समर्पित शिष्य श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज, श्रीवृन्दावनधाममें वैष्णवों एवं भक्तों द्वारा श्रीहरिनामके उच्चस्वर कीर्तनके मध्य, श्रीगुरु एवं श्रीगौराङ्गकी विवर्धनशील सेवाओंके उद्देश्यसे हमारे बीचसे प्रयाण किए हैं।

## प्रारम्भिक जीवन एवं श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजसे प्रथम भेंट

श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजका जन्म ५ सितम्बर, १९५५ ई. सोमवार, को संयुक्त राज्य अमेरिकाके कैलिफ़ोर्निया राज्यके San Diego नगरमें हुआ था। उस दिन पुरुषोत्तम-मासके कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी तिथि थी। युवावस्थामें हवाईमें निवास करते हुए ही उनका प्रथम परिचय कृष्णभावनामृत संघसे हुआ और वहीं उन्हें श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजका दर्शन एवं सान्निध्य प्राप्त करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् सन् १९७४ ई. में उन्होंने San Diego स्थित इस्कॉन मन्दिरमें रहना आरम्भ किया और सन् १९७५ ई. में श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजसे हरिनाम एवं दीक्षा प्राप्त की और तब उनका पारमार्थिक नाम हुआ—कृष्णभजन दास।

दीक्षा प्राप्त करनेके पश्चात् कृष्णभजन प्रभुने स्वयंको पूर्णतया श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके मिशनकी सेवामें समर्पित कर दिया। उन्होंने अनेक वर्षों तक मुख्यतः लॉस एंजेलिस मन्दिरसे ग्रन्थ-वितरण एवं प्रचार-कार्यमें अपना योगदान दिया। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिकाके पश्चिमी भागके

अनेक राज्यों, जैसे न्यू मेक्सिको, एरिज़ोना, यूटा, नेवाडा, टेक्सास तथा कैलिफ़ोर्नियामें श्रील स्वामी महाराजके ग्रन्थोंका वितरण किया। साथ ही उन्होंने लॉस एंजेलिस मन्दिरसे सम्बद्ध अनेक प्रचार-केन्द्रोंकी स्थापना एवं सेवाओंमें भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बादमें उन्होंने इस्कॉनके डेनवर मन्दिरमें एक गृहस्थके रूपमें सेवाएँ दीं।

## श्रील गुरुदेवका चरणाश्रय

सन् १९९७ ई. में कृष्ण-भजन प्रभुका प्रथम साक्षात्कार अपने शिक्षागुरु श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज (श्रील गुरुदेव) से हुआ। यह भेंट उनके पारमार्थिक जीवनमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लेकर आयी जिसके फलस्वरूप उन्होंने पूर्ण समर्पणके साथ श्रील गुरुदेवके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किया और अपने शेष जीवनको उनके मिशनकी सेवामें समर्पित कर दिया।

सन् २००३ ई. में श्रील गुरुदेवने उन्हें संन्यास प्रदानकर स्वामी भक्तिवेदान्त सज्जन नाम दिया। इसके पश्चात् उन्हें अनेक अवसरोंपर श्रील गुरुदेवके साथ विभिन्न देशोंकी प्रचार-यात्राओंमें सहभागी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जहाँ उन्होंने अपने उत्साह, परिश्रम तथा विविध व्यावहारिक योग्यताओंके द्वारा उनके मिशनके विश्वव्यापी विस्तारमें यथासम्भव योगदान दिया।

## विश्वव्यापी प्रचार एवं व्यावहारिक सेवा

श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजने श्रील गुरुदेवके आनुगत्य एवं निर्देशमें मेक्सिको, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका तथा अन्य अनेक देशोंमें प्रचार-सेवा की। उन्होंने स्पेनिश भाषाको सीखा, जिससे वे सीधे स्पेनिश-भाषी लोगों तक श्रीचैतन्य महाप्रभुका सन्देश पहुँचा सके। इस प्रकार उन्होंने लैटिन अमेरिकाके देशोंमें अनेक भक्त-समुदायोंके पोषणमें योगदान दिया। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आज्ञा, "यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश", को अपने जीवनका मार्गदर्शक सिद्धान्त मानते हुए वे स्वाभाविक रूपसे प्रत्येक व्यक्तिको श्रीहरिनामका जप करनेके लिए प्रेरित करते तथा जहाँ भी जाते, उत्साहपूर्वक अप्राकृत साहित्यका वितरण करते थे।

प्रचार-कार्यके अतिरिक्त उनकी विशेष जागतिक योग्यताके कारण उन्हें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेवाका भी अवसर प्राप्त हुआ। श्रील गुरुदेवसे मिलनेसे पूर्व वे इमर्जेन्सी मेडिकल टेक्नीशियन (ई.एम.टी.) के रूपमें कार्य कर चुके थे। चिकित्सा-क्षेत्रमें उनका यह प्रशिक्षण बादमें श्रील गुरुदेव तथा वैष्णवोंकी सेवामें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। श्रील गुरुदेवकी अनेक प्रचार-यात्राओंके समय आवश्यकता पड़ने पर वे उनकी

चिकित्सकीय देखभालमें महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते रहे।

उन्होंने श्रील गुरुदेवके मिशनमें उदारतापूर्वक आर्थिक सेवा भी की। विशेष रूपसे श्रील गुरुदेवके गोवर्धन स्थित श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठके निर्माणमें उनका उल्लेखनीय योगदान रहा। परवर्त्ती कालमें भी जब कभी उन्हें किसी भक्त अथवा किसी वैष्णव परियोजनामें सहयोगकी आवश्यकताका समाचार मिलता, वे अत्यन्त नीरवरूपमें (चुपचाप) एवं निःस्वार्थ भावसे उसकी सहायता करनेका प्रयास करते।

## धामवास एवं भजनमय जीवन

वर्षों तक विश्वके अनेक देशोंमें प्रचार-सेवा करनेके पश्चात् श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजने अपने जीवनके अन्तिम पाँच वर्ष श्रीनवद्वीपधाम एवं श्रीव्रजधाममें निवास करते हुए व्यतीत किए। धाममें उनका अन्तःकरण दिन-प्रतिदिन अपने भजनमें अधिकाधिक निमग्न होता गया। वे अपने आराध्य श्रीश्रीगौर-गदाधरकी अत्यन्त प्रेमपूर्वक सेवा-पूजा करते, हरिकथा-श्रवणमें विशेष आनन्दका अनुभव करते, उज्ज्वल-नीलमणि तथा राधा-रस-सुधा-निधि जैसे उन्नत ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करते तथा नियमित रूपसे धामकी पवित्र लीलास्थलियोंकी परिक्रमा किया करते थे।

## वैष्णवोंके प्रति उनका स्नेह एवं सेवा-भाव

श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजके जीवनकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता थी—वैष्णवोंके प्रति उनका निष्कपट स्नेह एवं आत्मीय सेवा-भाव। वे सदैव दूसरोंकी सहायता करनेके लिए तत्पर रहते थे, चाहे वह व्यावहारिक सेवा हो, उत्साहवर्धन हो, चिकित्सकीय सहायता अथवा आर्थिक सहयोग हो। दूसरोंकी सहायता करना उनके लिए एक कर्तव्य मात्र नहीं था; वह उनका सहज स्वभाव था।

उन्होंने अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें भी विशेष रूपसे अपने अनेक गुरुभाइयोंके अन्तिम समयमें अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उनकी देखभाल और सेवा करके उल्लेखनीय सेवाका आदर्श प्रस्तुत किया। अपनी चिकित्सकीय दक्षताका उपयोग करते हुए उन्होंने श्रीसहदेव प्रभु, श्रीपाद अवधूत महाराज, श्रीहंसगति प्रभु तथा अन्य अनेक वैष्णवोंकी अत्यन्त आत्मीयता एवं पारमार्थिक संवेदनशीलताके साथ सेवा की। उनकी इस सेवासे न केवल उन भक्तोंको, अपितु उनकी देखभालमें लगे अन्य सेवकोंको भी अत्यन्त सुविधा, सान्त्वना एवं बल प्राप्त हुआ।

पचास वर्षोंसे भी अधिक अपने भक्तिमय जीवनमें उन्होंने विश्वभरसे अनेक भक्तोंके साथ सदैव मधुर, स्नेहपूर्ण एवं आत्मीय सम्बन्ध बनाए रखे। चाहे किसीसे उनकी पहली भेंट हो अथवा वर्षों बाद किसी पुराने मित्रसे पुनर्मिलन, वे प्रत्येक व्यक्तिको यह अनुभव करा देते थे कि वह उनके लिए आदरणीय, प्रिय एवं महत्त्वपूर्ण है। अपने जीवनके

अन्तिम समयमें भी उनका यही स्वभाव बना रहा। उस अवस्थामें भी वे अपने कष्टकी अपेक्षा उन भक्तों की सुविधा एवं कुशलताके प्रति अधिक चिन्तित रहते थे, जो उनसे मिलने आते थे।

## उनके वैष्णवोचित गुण

श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराजसे परिचित सभी भक्त ही उनको अत्यन्त मिलनसार, सरल, विनम्र, करुणामय तथा निष्कपट वैष्णवके रूपमें जानते और स्मरण करते हैं। वे किसीके प्रति द्वेष या ईर्ष्या नहीं रखते थे तथा किसीकी निन्दा या आलोचना करनेकी प्रवर्त्तिसे भी रहित थे। वे सदा प्रत्येक व्यक्तिमें गुणोंको देखनेका प्रयास करते तथा भक्तोंके पारमार्थिक जीवनमें उनका उत्साह बढ़ाने और उनकी सहायता करनेका प्रयास करते थे।

सभीके प्रति उनका प्रीतिपूर्ण आत्मीय व्यवहार उनके अजातशत्रु व्यक्तित्वका परिचय देता था, अर्थात् उनके हृदयमें किसीके प्रति द्वेष या शत्रुताका भाव उदित ही नहीं होता। उन्होंने विभिन्न मठों, मिशनों तथा वैष्णव-समुदायोंके भक्तोंके साथ अत्यन्त मधुर एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखे। सभी वैष्णवोंके प्रति उनके निष्कपट सम्मान एवं हार्दिक सराहनाके कारण वे सर्वत्र आदर, स्नेह एवं विश्वासके पात्र बने।

## अन्तिम समय एवं प्रयाण

यद्यपि प्रायः एक माससे श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज असाध्य रोगसे ग्रस्त थे, तथापि उनके प्रयाणका समाचार सुनकर विश्वभरमें उनसे परिचित भक्तगण अत्यन्त व्यथित हो गये। श्रीवृन्दावनधाममें श्रीयमुना-तट स्थित श्रीकेशीघाट पर लगभग एक-सौ भक्तों द्वारा उच्चस्वरमें श्रीहरिनामके संकीर्तनके मध्य गौड़ीय-वैष्णव-रीतिके अनुसार उनका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न किया गया। तत्पश्चात् वैष्णव-रीतिके अनुसार उनके अस्थि विसर्जन श्रीवृन्दावनधाममें श्रीयमुनामें, श्रीनवद्वीपधाममें श्रीगङ्गामें तथा श्रीगोवर्धनकी तलहटीमें होनेसे वे धामरजको प्राप्त हुए।

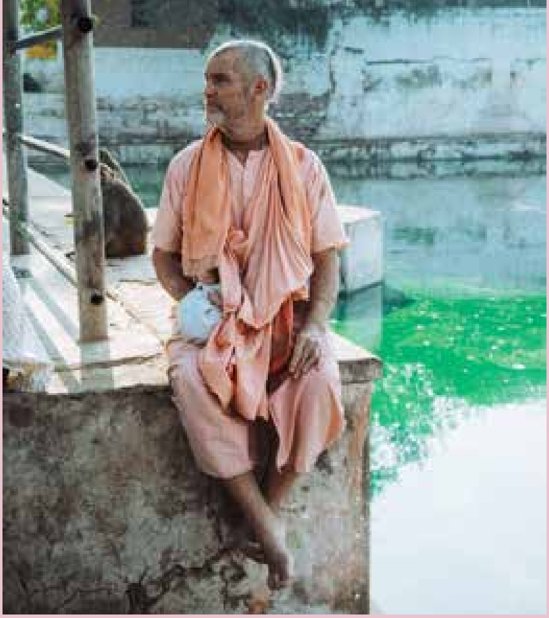

आगामी दिनोंमें विभिन्न देशोंके भक्तोंने उनके विषयमें अपनी हृदयस्पर्शी स्मृतियाँका कीर्तन करके उनके प्रति गहन स्नेह, श्रद्धा एवं कृतज्ञताका ज्ञापन किया। उनके सम्मानमें श्रीवृन्दावन स्थित श्रीराधे कुञ्ज तथा गोपीनाथ भवनमें एवं अमेरिकाके कैलिफोर्निया स्थित न्यूव्रज (बैजर)में विरह-उत्सवोंका आयोजन किया गया।

श्रीमद्भभक्तिवेदान्त सज्जन महाराज श्रीगुरुके प्रति अपनी एकान्तिक निष्ठा, वैष्णवोंकी निःस्वार्थ सेवा, अपने उदार एवं करुणामय स्वभाव हेतु दूसरोंके पारमार्थिक एवं व्यावहारिक कल्याणके प्रति अपनी शुभचिन्ताके लिए स्मरण किए जाते रहेंगे। उनका सम्पूर्ण जीवन विनम्र-सेवाका एक सुन्दर आदर्श है, और उनकी पावन स्मृति उन सभी साधकोंको निरन्तर प्रेरणा देती रहेगी जिन्हें उनके सान्निध्यका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्रीमद्भभक्तिवेदान्त सज्जन महाराज की जय!
श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज की जय!
श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज की जय!
श्रीगुरु-परम्परा की जय!

(श्रीमद्भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज एवं श्रीबोपदेव प्रभुके सौजन्यसे)

# स्वधाममें श्रीपाद कान्तिलाल प्रभु

विगत ५ अप्रैल, २०२६ ई०, रविवार, वैशाख मासकी कृष्ण-तृतीय-तिथिके दिन प्रातःकालमें हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके कृपापात्र एवं स्नेह-अभिषिक्त श्रीकान्तिलाल पुञ्जा प्रभुने ९० वर्षकी आयुमें न्यूजीलैण्डके ऑकलैण्ड स्थित अपने निवास स्थानपर अपने परिवारिकजनों द्वारा हरिनाम कीर्त्तन श्रवण करते हुए स्वधाम गमन किया है।

श्रीकान्तिलाल प्रभुका जन्म फिजीके लौटाका (Lautoka) शहरमें भारतीय मूलके एक धार्मिक परिवारमें वर्ष १९३५ ई० में हुआ था। उनके पूर्वज भारतके गुजरात राज्यसे थे। अपने चार भाईयोंके साथ इन्होंने फिजी एवं न्यूजीलैण्डमें 'Punja Group of Companies' की स्थापनाकर उसे वहाँकी एक सफल और घर-घरमें प्रसिद्ध पहचान बनाया। जागतिक रूपमें अत्यन्त धनी होनेपर भी श्रीकान्ति प्रभु बड़े सरल और नम्र स्वभावके, धर्मप्राण एवं उदारचित्त थे। वे समाजसेवाके क्षेत्रमें बहुत सक्रिय और सम्मानीय व्यक्ति थे। विशेषकर शिक्षा, स्वास्थ्य और वृद्ध नागरिकोंकी देखभालके क्षेत्रमें उनका बड़ा योगदान रहा। उन्होंने अनेक धार्मिक संस्थाओंकी भी सहायता की।

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजकी वर्ष १९७५ ई० में प्रथम फिजी यात्रा एवं तत्पश्चात् १९७६ ई० की यात्रा—इन दोनों समय श्रीकान्ति प्रभु एवं उनके भाईयोंने श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके आतिथेय और सेवा-सौभाग्यको वरण किया। तभी उनके दो भाईयोंने श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजसे हरिनाम-दीक्षा ग्रहण की। उस समय श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने भारतवर्षसे बाहर अर्थात् फिजीमें प्रथम custom-built 'श्रीकृष्ण-कालिय मन्दिर' की आधार शिला रखी। श्रीकान्ति प्रभु एवं उनके भाईयोंने इस मन्दिरके निर्माण और रखरखावमें विशेष आर्थिक योगदान देनेके अतिरिक्त ISKCON Fiji के प्रचार कार्योंमें भी सहायता की।

श्रीकान्ति प्रभुने जनवरी १९९८ ई० में श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको

फिजीमें आमन्त्रित किया और एक सप्ताह तक श्रील गुरुदेव एवं उनके साथ अनेक भक्तोंके आतिथेय और सेवा-सौभाग्यको वरण किया। उस वर्ष श्रीकान्ति प्रभुने फिजीके मुख्य द्वीप 'Viti-Levu' में श्रील गुरुदेवके अनेक हरिकथा कार्यक्रमोंकी व्यवस्था की तथा वे स्वयं ही गाड़ी चलाकर श्रील गुरुदेवको इन सब कार्यक्रमोंमें ले जाते थे। श्रीकान्ति प्रभु एवं उनकी पत्नी श्रीमती जया पुञ्जाने उसी समय श्रील गुरुदेवसे हरिनाम ग्रहण किया एवं २००५ ई॰ में दोनोंने श्रील गुरुदेवसे दीक्षा ग्रहण की।

श्रील गुरुदेव जनवरी १९९९ ई॰ में तीस भक्तोंके साथ तीन सप्ताहके लिए फिजी गये थे। उस समय भी श्रीकान्ति प्रभुने ही श्रील गुरुदेव एवं सभी भक्तोंके वास आदि की व्यवस्थाएँ की थीं। तब उन्होंने फिजीके दो मुख्य द्वीपोंमें श्रील गुरुदेवके हरिकथा कार्यक्रमोंकी व्यवस्था की थी और तब भी वे स्वयं ही गाड़ी चलाकर श्रील गुरुदेवको सभी कार्यक्रमोंमें ले जाते थे। इसके अतिरिक्त वर्ष २००० ई॰, २००२ ई॰, २००५ ई॰ और २००८ ई॰ में भी जब श्रील गुरुदेव फिजी आये थे तब भी श्रीकान्ति प्रभुने ही श्रील गुरुदेवका आतिथेय किया था।

श्रीकान्ति प्रभुने लौटाकामें एक मठकी स्थापनाके लिए भूमि संग्रह की थी। २००८ ई॰ में श्रील गुरुदेव उसके भूमि-पूजनके समय उपस्थित थे। उस भूमिपर पहलेसे ही एक छोटा-सा ग्रह निर्मित था जिसे नवमन्दिर निर्माण होने तक वर्तमानमें मन्दिरके रूपमें व्यवहार किया जा रहा है। श्रीकान्ति प्रभु ही आर्थिकरूपसे इस स्थानकी देखरेख कर रहे थे।

इसके अतिरिक्त वे श्रील गुरुदेवके निर्देशसे फिजीमें प्रचार हेतु जानेवाले वरिष्ठ वैष्णवोंका भी आतिथेय और सेवा करते थे। भारतवर्षमें श्रील गुरुदेवकी परियोजनाओं विशेषकर वृन्दावनमें गोपीनाथ भवन एवं गोवर्धनमें श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठके निर्माणमें भी उन्होंने सेवा-सौभाग्य वरण किया था।

श्रीकान्ति प्रभु की जय!

श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी जय!

श्रीगुरु-परम्पराकी जय!

[आभार—श्रीसुन्दरगोपाल प्रभु (ऑस्ट्रेलिया)]

# स्वधाममें श्रीमती गीता दीदी

विगत २७ जून, २०२६ ई॰, शनिवार, ज्येष्ठ मासकी गौर-त्रयोदशी, श्रील रघुनाथदास गोस्वामीके दही-चिड़ा(दण्ड) महोत्सवकी शुभ तिथिपर प्रातःकालमें हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी कृपापात्री चरणाश्रिता श्रीमती गीता दीदी (खण्डेलवाल)ने वर्धमान स्थित अपने निवास स्थानपर श्रीश्रीगुरु एवं गौराङ्गको उच्चस्वरसे पुकारते हुए अपने साधनोचित धामके लिए गमन किया है। वे गत २ सालसे असाध्य रोगसे पीड़ित थीं।

गीता दीदीका जन्म १६ नवम्बर १९६६ ई॰, मोक्षदा एकादशी (गीता जयन्ती) तिथिपर मथुरा धाममें हुआ था, अतः उनकी दादीने उनका नाम गीता रख दिया। गीता दीदीने अपनी शिक्षा मथुरामें रहते हुए संस्कृतमें M.A. करके पूर्ण की। अपने ताऊजी की बेटी मधु दीदीसे प्रभावित होकर उन्होंने सर्वप्रथम श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रील गुरुदेवके दर्शन प्राप्तकर अतिशीघ्र ही उनसे हरिनाम-दीक्षारूपी कृपाका सौभाग्य प्राप्त किया। श्रील गुरुदेवके आचार-विचार, शिक्षा, भाव-धारा, व्रजभक्तिकी रीति-नीति एवं उनके स्नेहसे अभिषिक्त होकर वे उनके श्रीचरणोंमें समर्पित होती चली गयी।

वर्ष १९८८ ई॰ में विवाहके पश्चात् वे पश्चिम बङ्गालके वर्धमानमें अपने ससुरालमें रहने लगीं और वहाँ मीठा पुकर स्थित गौड़ीय मठमें श्रील प्रभुपाद अनुकम्पित श्रील भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित तत्कालीन आचार्य—श्रीमद्भक्तिजीवन आचार्य महाराजको शिक्षागुरुके रूपमें स्वीकारकर प्रतिदिन मठमें जाकर उनकी हरिकथा श्रवण करते हुए उनके आनुगत्यमें भक्ति-साधन करने लगीं। पूज्यपाद आचार्य महाराज भी गीता दीदीको श्रील गुरुदेवकी चरणाश्रिताके रूपमें जानकर एवं साधन-भजनमें उनके उत्साह और निष्ठाको देखकर उनके प्रति बहुत स्नेहशील थे।

गीता दीदी वैष्णव-कृपाको पारमार्थिक जीवनका सम्बल जानकर उसके लिए चेष्टाशील रहतीं और सभी वैष्णवोंको मर्यादा-सम्मान देते हुए यथासम्भव उनकी शिक्षाओंको पालन करनेका प्रयास करती थीं। श्रील गुरुदेवकी आज्ञानुसार वे प्रतिवर्ष व्रजमण्डल-परिक्रमा एवं नवद्वीप-धाम-परिक्रमामें योगदान करनेके लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करती एवं परिक्रमाके समय गुरु-वैष्णवोंके श्रीमुखसे कीर्तन-हरिकथाको बहुत प्रीतिपूर्वक श्रवण करती थी। विशेषकर अक्षय-तृतीयपर श्रीविग्रहके लिए चन्दन घीसनेकी सेवाको बड़े लग्नसे मन-प्राण देकर करती थीं।

गीता दीदीकी ग्रन्थ अध्ययनमें विशेष रूचि थी और सर्वदा ग्रन्थ अध्ययनके लिए वे समय-अभावका अनुभव करती थीं। वे ग्रन्थ अध्ययनके notes बनाती और कठिन विषयोंपर वैष्णवोंसे चर्चा करती थीं। गृहस्थ आश्रममें होकर भी वे एक सच्चे साधककी भाँति सर्वदा हरिनाम और ग्रन्थ अध्ययनमें अधिक समय देकर सांसारिक चर्चामें समय नष्ट नहीं करती। वे अपनी आवश्यकताओंको सीमित करते हुए अपने लिए यथासम्भव अल्प खर्च करती और इस प्रकार हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए धनको संरक्षित करती थी। वे स्वभावसे सरल, विनीत और निष्कपट थी तथा सबको यथायोग्य सम्मान देते हुए अपने साधन-भजनके लिए प्रार्थना करती थीं।

अपनी असहनीय रोग-पीड़ा-अवस्थामें भी पुरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथके दर्शन हेतु चेष्टा करनेपर श्रीजगन्नाथदेवकी कृपासे उनका दर्शन सहज हुआ। वे अपने अन्तिम दिनोंमें zoom पर मधु दीदी द्वारा प्रतिदिन सुबह पठनीय श्रील रघुनाथदास गोस्वामी रचित श्रीविलाप-कुसुमाञ्जलीकी कथाएँ सुनकर श्रीमती राधारानीकी चरणसेवा प्राप्तिके लिए प्रार्थना करती। २७ जून, २०२६ ई॰, को प्रातः श्रीविलाप-कुसुमाञ्जलीकी कथा सुनते-सुनते ही वे उच्च-स्वरसे हा गुरुदेव! हा नित्यानन्द प्रभु! हा राधारानी! पुकारने लगी और कुछ ही देरीमें उन्होंने प्राण त्याग दिये। इस दिन श्रील रघुनाथदास गोस्वामीके दही-चिड़ा(दण्ड) महोत्सवके अतिरिक्त उनके शिक्षागुरु—श्रीमद्भक्तिजीवन आचार्य महाराजकी शुभ-आविर्भाव तिथि भी थी। गीता दीदीकी गुरु-वैष्णवोंके प्रति सेवा-निष्ठा स्मरण योग्य है।

[आभार—मेघा-मधु खण्डेलवाल]

**क्व तावद्वैराग्यं क्व च विषयवार्तासु नरके-**
**ष्विवोद्वेगः क्वासौ विनयभर-माधुर्य-लहरी।**
**क्व तावत्तेजो ऽलौकिकमथ महाभक्तिपदवी**
**क्व सा वा संभाव्या यदवकलितं गौरगतिषु॥**

**अनुवादः** श्रीगौरहरि ही जिनकी एकमात्र गति हैं, उन गौर-भक्तोंमें जैसा अहैतुक वैराग्य या भगवदनुरक्ति देखनेको मिलती है, वैसा वैराग्य और कहाँ है! उनके समान विषयवार्त्ता या सांसारिक कथाओंमें अनुभव किया जानेवाला नरकपतनकी भाँति उद्वेग ही और कहाँ है! उनके जैसी विनय-नम्रतासे परिपूर्ण सौन्दर्य-लहरी ही और कहाँ है! उनके समान अलौकिक तेज या प्रभाव ही और कहाँ है! तथा उनके जैसी महाभावमयी चमत्कारिणी भक्तिपदवीकी सम्भावना ही और कहाँ है!

(श्रीचैतन्य-चन्द्रामृतम् २०)

# श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
# श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी
## द्वारा स्वयं एवं उनके कृपाशीर्वाद और प्रेरणासे
# भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

| | | |
|---|---|---|
| १. | **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, (उ.प्र.) | ☎ ९७१९०७०९३९ |
| २. | **श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, (उ.प्र.) | ☎ ९२१९४७८००१ |
| ३. | **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, (प.बं.) | ☎ ९३३३२२२७७५ |
| ४. | **श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, (उ.प्र.) | ☎ ९९१७६४३९७१ |
| ५. | **श्रीगोपीनाथ-भवन,** इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, (उ.प्र.) | ☎ ९६३४५६३७३९ |
| ६. | **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, (उ.प्र.) | ☎ (०५६५)२८१५६६८ |
| ७. | **श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली | ☎ (०११)२५५३३२६८ |
| ८. | **श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता-९ | ☎ ९७७६२३८३२८ |
| ९. | **जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा | ☎ ९७७६२३८३२८ |
| १०. | **श्रीराधे-कुञ्ज**, आनन्द-वाटिकाके समीप, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन (उ.प्र.) | ☎ ९७७६२३८३२८ |
| ११. | **श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, प्लाट-३, सेक्टर-२१-सी, फरीदाबाद, हरियाणा | ☎ ९९११२८३८६९ |
| १२. | **श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, हेसेरघट्टा, नृत्यग्राम कुटीरके पास, बङ्गलोर | ☎ (०८०)२८४६६७६० |
| १३. | **श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, रूपनगर एन्क्लेव, जम्मू | ☎ ९९०६९०४८०९ |
| १४. | **श्रीराधाविनोदबिहारी गौड़ीय मठ**, Q-२९, सेक्टर-१२, नोएडा (उ.प्र.) | ☎ ९६५०८२४४४२ |
| १५. | **आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन (उ.प्र.) | ☎ (०५६५)२५४०८४९ |
| १६. | **श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.) | ☎ ८६२९९११४०० |
| १७. | **श्रीश्रीराधामदनमोहन मन्दिर**, जयपुर, राजस्थान | ☎ ७२२९८८२२२८ |

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2025-2027
DATE OF PUBLICATION - 25 JULY 2026

# पारमार्थिक सचित्र हिन्दी पत्रिका श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके सदस्य बनें

एक वर्षीय (1yr) – ३०० रु॰

पञ्च वर्षीय (5yr) – १,२०० रु॰

आजीवन (Lifetime) – ७,५०० रु॰
[७५० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

संरक्षक (Patron) – १०,००० रु॰
[१००० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

## सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

| | |
|---|---|
| Account name: | SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA |
| Account no. : | 037201000010611 |
| IFSC code: | IOBA0000372 |
| Bank: | Indian Overseas bank |

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 9818779345 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

## सम्पर्क–सूत्र

**श्रीश्रीभागवत–पत्रिका कार्यालय**
**श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**
**जवाहर हाट, मथुरा–२८१००१ (उ.प्र.)**

श्रीश्रीभागवत–पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध–समूह एवं विषय–वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाकी सदस्यता–शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929